॥ श्रीहरिः ॥
278
सच्ची सलाह
(परमार्थ-पत्रावली—भाग-२)
गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR
जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

सच्ची सलाह

(परमार्थ-पत्रावली भाग-२)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

प्रथम संस्करणका निवेदन

आज परमार्थ-पत्रावलीका द्वितीय भाग प्रेमी पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करते हुए हमें बड़ा आनन्द हो रहा है। संतोषकी बात है कि प्रथम भागको जनताने बड़े प्रेम और उत्साहसे अपनाया तथा आदर किया है। कुछ ही वर्षोंमें उसके तीन संस्करण प्रकाशित हो गये। श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्रोंमें संक्षेपतः उपादेय विषयोंका कितना सरल और सुन्दर विवेचन रहता है— यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। जिज्ञासुओंकी परमार्थविषयक रुचि एवं सत्संग-प्रेमको बढ़ाने तथा आन्तरिक जिज्ञासाकी पूर्ति करनेमें इन पत्रों द्वारा बहुत सहायता मिलती है, इसलिये परमार्थ-प्रेमियोंका इसकी ओर झुकाव होना स्वाभाविक है। लोगोंके इस परम लाभकी ओर दृष्टि रखकर ही यह द्वितीय भाग प्रकाशित किया गया है। इसमें ८० पत्रोंका संग्रह हुआ है।

धर्मप्रेमी बन्धुओंसे प्रार्थना है कि वे इस नवीन संग्रहसे लाभ उठावें।

—**प्रकाशक**

नोट—प्रस्तुत पुस्तक सं० २०४९ से '**सच्ची सलाह**' नामसे प्रकाशित की गयी है।

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

पत्र-नं० पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

सच्ची सलाह

[१]

आपका ३० तारीखको १८-१-१९३४ सन्‌का कृपापत्र मिला था; कई प्रकारके कार्योंकी भीड़ एवं अस्वस्थता आदि कारणोंसे पत्र लिखनेमें विलम्ब हो गया, इसके लिये क्षमा करें। आपने प्रश्नोंके सम्बन्धमें कुछ बातें पूछीं सो बड़े आनन्दकी बात है, इसके लिये क्षमा नहीं माँगनी चाहिये और न उत्तरके लिये टिकट ही भेजना चाहिये। आपका शंकानिवारणार्थ पूछना उचित ही है, इसमें नास्तिक माननेकी कौन-सी बात है। किसीको भी नास्तिक समझ लेना समझदार मनुष्यके लिये उचित नहीं है। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः निम्नलिखित है—

१-नाम-जप और ध्यानके सम्बन्धमें पूछा सो मेरी समझसे नाम-जप और ध्यानसे अवश्य ही आत्माका उत्थान होता है। मनुष्य जिसका नाम उच्चारण करता है, उसीका स्वरूप उसे याद आता है और वह जैसी वस्तु होती है, वैसा ही उसका असर पड़ता है। जब कामी पुरुष स्त्रीकी याद करता है, तो उसके मनमें कामका विकार प्रत्यक्ष उत्पन्न होता देखा जाता है, तब विज्ञानानन्दघन परमात्माके चिन्तनसे ज्ञान और आनन्दकी वृद्धि होनेमें क्यों शंका करनी चाहिये? भगवान्‌के नाम-जप और ध्यानसे समस्त पापोंका नाश होकर परमपदकी प्राप्ति होती है ऐसा विश्वास करना ही चाहिये। प्रत्यक्षमें भी ध्यान और नाम-जप करते समय स्फुरणाका अभाव और आनन्दकी प्राप्ति होती ही है। शास्त्रप्रमाण तो बहुत हैं। पातंजलयोगदर्शनमें सूत्र हैं—

'तस्य वाचकः प्रणवः।'
'तज्जपस्तदर्थभावनम् ।'

उस परमात्माका वाचक अर्थात् नाम ॐ है, उस ॐ का जप और उसके अर्थकी भावना अर्थात् परमात्माके स्वरूपका चिन्तन करना।

'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।'

इससे विघ्नोंका अभाव और परमात्माकी प्राप्ति भी हो जाती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् कहते हैं—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और (उसके अर्थस्वरूप) मुझको चिन्तन करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह परमगतिको प्राप्त होता है।

गोस्वामी तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास आदि अनुभवी सन्त भी अपने अनुभवसे नाम-महिमाकी घोषणा करते हैं। आधुनिक कालके भी अच्छे-अच्छे पुरुषोंने नामसे लाभ होना अपने अनुभवसे बतलाया है। मैं अपने अनुभवके सम्बन्धमें क्या लिखूँ, इतना ही काफी है कि मुझको तो इससे शान्ति मिली है।

२-सगुण परमात्माके दो भेद हैं, एक सगुण निराकार और दूसरा सगुण साकार। सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंका कार्य यह दृश्य-प्रपंच जब कारणमें लय हो जाता है तब वह गुणमयी प्रकृति विज्ञानानन्दघन परमात्माके जिस अंशमें स्थित रहती है वही निराकार सगुण ब्रह्म है। इस निराकार सगुण ब्रह्मका संसारके नाश होनेपर भी नाश नहीं होता। इसीको गीता (८।२०)-में सनातन अव्यक्त कहा है—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

उस अव्यक्तसे भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्तभाव है, वह परम दिव्य पुरुष सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता।

यह कोई नियमकी बात नहीं है कि सगुण वस्तु साकार ही हो। आकाश निराकार है और सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु उसमें शब्द-गुण वर्तमान है।

आकाशमें स्थित जल निराकार रहता है, वही बादलके रूपमें आता है और वही जल, बर्फ इत्यादिके रूपमें आ जाता है। निराकाररूपमें भी जलके गुण रहते हैं, परन्तु उसका आकार नहीं दीखता। तथापि वहाँ जलका अस्तित्व मानना ही होता है। अतएव सगुण अव्यक्त ब्रह्मको सर्वत्र व्याप्त कहनेमें और समस्त संसार उसमें लीन होता है यह कहनेमें कोई 'वदतो व्याघात' दोष नहीं आता।

३-भगवान् पुरुषविशेष हैं, पर वे अल्प नहीं हैं। योगदर्शनमें कहा है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।'
(१।२४)

क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और मरणभय), कर्म (शुभ, अशुभ और मिश्रित), विपाक (सुख-दुःख) और आशय (वासना)-के संसर्गसे रहित पुरुषविशेष (पुरुषोत्तम)-का नाम ईश्वर है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयं भगवान् कहते हैं—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(१५। १८-१९)

मैं नाशवान् जडवर्गसे तो सर्वथा अतीत हूँ और (मायामें स्थित) अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ। इसलिये मैं लोकमें और वेदमें पुरुषोत्तम (नामसे) प्रसिद्ध हूँ। हे भारत! इस प्रकार तत्त्वमे जो ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझको ही भजता है।

४-भगवान्‌को कोई उत्पन्न नहीं करता, वे स्वयं प्रकट होते हैं। यद्यपि लोकदृष्टिसे मनुष्याकारमें भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्ण माता-पितासे प्रकट होते-से दीखते हैं, परन्तु वास्तवमें वे अपने-आप ही अवतीर्ण होते हैं। गीतामें कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(४। ६)

मैं अविनाशीस्वरूप अजन्मा होनेपर भी तथा सब भूतप्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूँ।

५-समस्त संसार उस सगुण अव्यक्त परमेश्वरके सकाशसे प्रकृतिसे ही प्रकट होता है तथा अपने कारण प्रकृतिमें ही लीन हो जाता है और प्रकृति परमेश्वरमें स्थित रहती है।

६-आपने लिखा कि परमेश्वर यदि अवतीर्ण हो गया तो फिर प्रकृतिके कार्यको कौन सँभालता है। सो, प्रकृतिका कार्य सदा सँभालनेवाले प्रभु ही सँभालते हैं। वे समस्त भूतोंके ईश्वर रहते हुए ही देशविशेषमें अवतीर्ण होते हैं और साकार-निराकार दोनों रूपोंमें स्थित रहते हुए ही सब कार्य सँभालते हैं। एक देशमें

प्रकट होनेपर अन्य देशोंमें उनका अभाव नहीं होता। जैसे अग्नि अव्यक्तरूपसे सभी जगह व्याप्त है, परन्तु वही व्यक्तरूपसे एक जगह या एक ही साथ अनेक जगह प्रकट हो सकता है। इससे न तो उसकी व्यापकतामें कोई बाधा आती है न शक्तिहीमें न्यूनाधिकता होती है। जब प्राकृत अग्निके लिये ही ऐसा सम्भव है, तब सर्वत्र व्यापक, सर्वशक्तिमान् परमात्माके लिये तो शंकाकी बात ही कौन-सी है?

७-भगवान्‌के अवतारका एक उद्देश्य, 'दुष्टोंका विनाश' '**विनाशाय च दुष्कृताम्**' भी है। इसीलिये भगवान्‌ने जरासन्धको पहली ही बारमें न मारकर उसे बार-बार आक्रमण करनेका मौका दिया, जिससे बार-बार दुष्टोंका नाश हो । इसमें और भी अनेक हेतु हो सकते हैं। ईश्वरकी क्रियाका सम्पूर्ण उद्देश्य साधारण मनुष्योंकी समझमें नहीं आ सकता।

८-श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदिकी बातें श्रद्धापूर्वक माननी चाहिये। इनमें जहाँ परस्पर मतभेद दीख पड़े, वहाँ इतिहास, पुराण आदिकी अपेक्षा स्मृतिको और स्मृतिकी अपेक्षा श्रुतिको अधिक बलवान् समझना चाहिये। जहाँ श्रुतियोंमें भी विरोध हो, वहाँ दोनोंको ही प्रमाण मानना उचित है। हाँ, रहस्य समझनेके लिये विचारपूर्वक विरोधका निराकरण करके दोनोंका समन्वय करना चाहिये। नहीं तो, जितनी बात समझमें आवे उतनी ही काममें लानी चाहिये। सभी बातें प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा सिद्ध नहीं हो सकतीं। भौतिक विज्ञानमें भी अनुमान और आप्तवाक्योंको स्थान है। शास्त्रोंके न माननेसे हम महापुरुषोंद्वारा उपदेश किये गये ज्ञानसे वंचित रह जाते हैं और मानकर तदनुसार आचरण करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है।

९-मैं नहीं कह सकता कि मैंने परमेश्वरको देखा है, परन्तु

मेरा पूर्ण और दृढ़ विश्वास है कि परम श्रद्धा और अनन्यप्रेमसे परमेश्वरकी उपासना करनेपर उनके प्रत्यक्ष दर्शन हो सकते हैं। गीतामें भगवान्ने कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(११। ५४)

हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्यभक्तिके द्वारा इस प्रकार प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये भी शक्य हूँ।

१०-परमेश्वरका साक्षात् दर्शन होनेपर श्रुति-स्मृतियोंमें जो लक्षण बतलाये हैं, वे उस दर्शकमें आ जाते हैं। यथा—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

(मु० उ० २। २। ८)

उस परावर (कारण-कार्यरूप) ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेनेपर इस जीवकी हृदयग्रन्थि टूट जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और इसके कर्म क्षीण हो जाते हैं।

जिनके दर्शनसे हमारे अन्दर ये उपर्युक्त लक्षण घट जायँ, उन्हींको परमेश्वर मानना चाहिये। भगवान्का निराकार स्वरूप तो अनुभवसे ही समझमें आता है, वह एक ही है। परन्तु साकार स्वरूप भक्तकी इच्छाके अनुसार प्रकट हो सकता है। भक्त जिस रूपमें भगवान्का दर्शन करना चाहता है, भगवान् उसी रूपमें प्रकट होकर उसे दर्शन देते हैं।

११-भगवान्के नाम-जपका अभ्यास और परहितमें रत रहकर निष्काम सेवा करना—ये दोनों ही परमात्माकी प्राप्तिके साधन हैं, इसलिये दोनों ही करने चाहिये। भगवान्के नाम-

जपको तोतेकी रटन्तके समान समझनेमें तो भगवान्‌के नाम-जपके रहस्यको न समझना ही हेतु है।

१२-जिसके पालनसे इस लोक और परलोकमें परमहित हो, वही परमहित है, उसीका नाम परमधर्म है, वही शास्त्रका विधिवाक्य है और वही ईश्वरकी आज्ञा और इच्छा है। ईश्वरकी इच्छा जाननेके तीन साधन हैं—

(क) श्रुति-स्मृतिके विधिवाक्य, (ख) महापुरुषोंके वचन और आचरण, (ग) शुद्ध हृदयकी स्फुरणा।

सबसे पहले मनुष्यको ईश्वरकी आज्ञारूप शास्त्रोंके विधि-वचनोंको ईश्वरकी इच्छा समझकर तदनुकूल आचरण करना चाहिये। शास्त्रोंमें विरोधाभास प्रतीत हो और उनका रहस्य समझमें न आवे तो महापुरुषोंसे पूछकर शंकाओंका समाधान करना चाहिये और उनके आज्ञानुसार चलना चाहिये। महापुरुष वे ही हैं, जिनमें गीता अ० १२ श्लोक १३ से १९ तकके और गीता अ० १४ श्लोक २२ से २५ तकके लक्षण मिलते हों। महापुरुषोंके वचनोंमें भी शंका होनेपर या ऐसे महापुरुषोंके न मिलनेपर एकान्तमें बैठकर पक्षपातरहित हो, शुद्ध, श्रद्धामय हृदयसे भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और उन्हींसे मार्ग पूछना चाहिये। इस प्रकार हृदयस्थ ईश्वरसे प्रश्न करनेपर हृदयमें जिस भावका उदय हो, उसीको ईश्वरकी इच्छा समझकर तदनुसार आचरण करना चाहिये।

१३-परमात्मा परमदयालु होनेके साथ ही परमकठोर भी हैं, परन्तु उनकी कठोरतामें भी दया भरी है। जैसे दयालु न्यायकारी राजा अपनी प्रजाके हितके लिये दण्डका विधान करता है, इसी प्रकार परमेश्वर भी जीवोंको पापके फलस्वरूप दण्ड देते हैं। इसमें ऊपरसे निष्ठुरता प्रतीत होती है, परन्तु वास्तवमें परमहित

भरा है। अथवा जैसे स्नेहमयी माता अपने प्यारे बच्चेको बुरे आचरणसे हटानेके लिये मारती है, इसी प्रकार भगवान् भी जीवोंके साथ दयापूर्ण कठोर बर्ताव करते हैं। राजा और माताके द्वारा तो असावधानी, बुद्धिकी मन्दता एवं स्वार्थसे कहीं भूल भी हो सकती है, परन्तु परमदयालु, न्यायकारी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिशाली भगवान्के द्वारा तो जो कुछ होता है सो सब हमारे हितके लिये ही होता है। शास्त्र भी इसमें प्रमाण हैं। शास्त्रोंमें जगह-जगह भगवान्को परमदयालु और सर्वशक्तिमान् बतलाया है (गीता ५। २९)। युक्तिसे भी यही सिद्ध होता है।

१४-'परमोच्चशिखर' मनगढ़न्त बात नहीं है। सर्वोच्च स्थिति और सर्वोत्तम परमधामका नाम ही 'परमोच्चशिखर' है। जिसको मनुष्य सबसे उच्च ध्येय समझते हैं, जिसको मोक्ष या कल्याण कहते हैं, वही 'परमोच्चशिखर' है। गीतामें भगवान्ने कहा है—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(८। २१)

'जो अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है, उसी अक्षर नामक अव्यक्तभावको परमगति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्तभावको प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं लौटते हैं वह मेरा परमधाम है।'

साधन करनेपर ही इसका प्रत्यक्ष होता है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

१५-'देव' शब्दसे शास्त्रोक्त ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति और इन्द्र ये ३३ देवता प्रधान माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेकों देवता हैं। इनकी पूजा या इनके निमित्त होम आदि करना चाहिये। भगवान्ने यज्ञ करनेकी आज्ञा देते हुए कहा है—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

(गीता ३। ११)

तुमलोग इस यज्ञद्वारा देवताओंकी उन्नति करो और वे देवतालोग तुमलोगोंकी उन्नति करें। इस प्रकार आपसमें उन्नति करते हुए परमकल्याणको प्राप्त होओगे।

१६-'पितृ' शब्दसे जीवित या परलोकगत पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही आदि हैं। इसलिये जीवित पितरोंकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये और परलोकगत पितरोंके हितार्थ उनकी आत्माकी शान्तिके लिये ब्राह्मण-भोजन, श्राद्ध, तर्पण, व्रत, जप, दान, होम, ईश्वरप्रार्थना आदि करने चाहिये।

१७-परमेश्वरके सर्वव्यापी, निराकार, विज्ञानानन्दघन स्वरूपको ही आदि बतलाया गया है। इसका विस्तारसे वर्णन देखना हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'भगवान् क्या हैं?' नामक पुस्तिकामें देख सकते हैं। श्रद्धा और प्रेमसे होनेवाले मनोवांछित शास्त्रानुकूल साकारदर्शन भी अवास्तविक नहीं हैं।

आपने लिखा कि मेरे लिखनेसे बुरा नहीं मानना चाहिये। सो इसमें बुरा माननेकी कोई भी बात नहीं है। जँचे जैसी बात अवश्य ही पूछनी चाहिये। आपके प्रश्नोंके उत्तर अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार संक्षेपमें दिये गये हैं।

अन्धश्रद्धाके सम्बन्धमें मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि विवेकयुक्त श्रद्धा ही उत्तम है, परन्तु कितना ही विवेक क्यों न हो आखिर विश्वास करना ही पड़ता है। विश्वास किये बिना न तो संसारमें आजतक काम चला और न आगे चल ही सकता है।

आपने लिखा कि 'जो प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा—विज्ञानद्वारा सिद्ध नहीं वह असत्य है—ऐसा हमारा सिद्धान्त है।' मेरी साधारण

समझके अनुसार ऐसा मानना युक्तियुक्त नहीं है। प्रत्यक्षके अतिरिक्त युक्ति और शास्त्रप्रमाण भी अच्छे पुरुषोंद्वारा माने गये हैं और उन्हें मानना ही चाहिये। पूर्वमें होनेवाले प्रायः सभी महात्माओंने प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमादि प्रमाणोंको माना है।

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।

(योग० १।७)

[२]

आप सरकारी नौकरी छोड़कर व्यापार-क्षेत्रमें आ गये हैं सो बहुत उत्तम है। आपने स्वामीजी श्रीयोगानन्दजीसे शिवमन्त्रकी दीक्षा ली सो बहुत अच्छा किया। उनकी बंगभाषा होनेके कारण उनके उपदेशोंसे आप विशेष लाभ नहीं उठा सके एवं उनकी आज्ञाका समीचीनरूपसे पालन नहीं कर सके, इसमें प्रधानतया श्रद्धा और प्रेमकी कमी ही कारण है। इसलिये उनको असन्तुष्ट रहना उचित ही है। अब उनका शरीर शान्त हो गया यह शोककी बात है, किन्तु कोई उपाय नहीं। उनके बताये हुए उपदेशको काममें लानेकी कोशिश करनी चाहिये।

आपने लिखा कि गुरु-मन्त्र, इष्ट-मन्त्र तथा गायत्री-मन्त्रका जप करता रहता हूँ, किन्तु श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेमकी कमी होनेके कारण काम-क्रोधादि षड्रिपु चित्तको चंचल करते रहते हैं। इनकी निवृत्ति और श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमकी उत्पत्तिके लिये उपाय पूछा सो ठीक है। वास्तवमें तो भगवान्‌का सच्चा भक्त ही इनका उपाय बतला सकता है। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ तथापि आपके प्रेमके कारण अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार कुछ लिखता हूँ, त्रुटियोंके लिये क्षमा करेंगे।

भगवान्‌के गुण, प्रेम, रहस्य और प्रभावकी बातें भगवान्‌के

प्रेमी भक्तोंसे सुनकर मनन करनेसे, भगवान्‌का प्रभाव जाननेसे भगवान्‌में श्रद्धा उत्पन्न होती है और उस श्रद्धासे प्रेम तथा भक्तिकी वृद्धि होती है।

भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान एवं स्वार्थको त्यागकर दुःखी जीवोंकी सेवा करनेसे एवं न्यायोपार्जित द्रव्यसे संगृहीत आहार करनेसे अन्तःकरण पवित्र होता है, तब श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमकी वृद्धि होती है। इनकी वृद्धि होनेसे विषयासक्तिका नाश हो जाता है और विषयासक्तिके नाश हो जानेपर काम-क्रोधादि षड्‌रिपु कभी उत्पन्न नहीं होते। गोस्वामी तुलसीदासजीने उत्तरकाण्डमें कहा है—

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥

नवद्वीप जाकर श्रीगौरांग महाप्रभुके मन्दिरमें भजन-कीर्तन करनेकी इच्छा प्रकट की सो उत्तम बात है।

भगवान्‌के प्रेमी भक्त जहाँ हों, वहीं सब तीर्थ वास करते हैं और जहाँ उनके प्रेमी भक्त भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन करते हैं वहाँ तो भगवान् स्वयं विराजमान रहते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

इसलिये सत्पुरुषोंका संग अवश्यमेव करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। सत्पुरुषोंकी महिमा श्रीमद्भागवत, रामायणादि ग्रन्थोंमें जगह-जगह गायी है।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भा० १।१३।१०)

'हे स्वामिन्! आप-सरीखे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थरूप हैं। (पापियोंके द्वारा कलुषित हुए) तीर्थोंको आपलोग अपने हृदयमें स्थित भगवान् श्रीगदाधरके प्रभावसे पुनः तीर्थत्व प्राप्त करा देते हैं।' तुलसीदासजीने कहा है—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

आपने लिखा कि प्रेममें मग्न होकर अश्रुपात करते हुए भक्तोंको देखकर भी प्रेम एवं अश्रुपात नहीं होते इसके लिये भगवान्से प्रार्थना भी की गयी परन्तु कुछ नहीं हुआ सो ठीक है। आपको अपने दोष और अपराधोंका खयाल करके भगवान्के शरण होकर करुणाभावयुक्त गद्गद वाणीसे पुनः-पुनः भगवान्की स्तुति और प्रार्थना वैसे ही करनी चाहिये जैसे उत्तरकाण्डमें विरहके समय भरतजीने की है—

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

इस घोर कलिकालमें सबसे उत्तम भगवान्के भजनकी महिमा शास्त्रोंमें गायी गयी है, इसलिये ध्यानसहित भगवान्के नामका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर जप करनेकी कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥
कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
दो बातनको भूल मत, जो चाहत कल्यान।
'नारायन' एक मौतको, दूजे श्रीभगवान॥
'कबिरा' सूता क्या करै, जागो जपो मुरारि।
एक दिना है सोवना, लम्बे पाँव पसारि॥
'कबीर' नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुरपट्टन यह गली, बहुरि न देखो आय॥
जब ही नाम हृदय धर्‌यौ, भयो पापको नास।
मानौ चिनगी अग्निकी, परी पुराने घास॥
रामनाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
'तुलसी' भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर॥

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(८।१४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मुझको स्मरण करता है, उस निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(१२। २)

'मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें भी अति उत्तम योगी मान्य हैं। अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूँ।'

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(९।३०)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त हुआ मुझको निरन्तर भजता है वह साधु ही माननेयोग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।'

सुन्दरदासजी कहते हैं—

सन्त सदा उपदेस बतावत, केस सबै सिर सेत भये हैं।
तू ममता अजहूँ नहिं छाँड़त, मौतहु आय संदेश दये हैं॥
आज कि काल चलै उठि मूरख, तेरे ही देखत केते गये हैं।
'सुन्दर' क्यों नहिं राम सम्हारत, या जगमें कहु कौन रये हैं॥

[३]

१-'कल्याण' देखकर आपने 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रका जप आरम्भ किया, दैनिक चार-पाँच हजारतक करने लग गये थे और अब दस हजार करते हैं सो अच्छी बात है। जहाँतक हो सके संख्या बढ़ानेकी कोशिश करनी चाहिये। आजतक पचीस लाख मन्त्र-जप आप कर चुके सो बहुत आनन्दकी बात है।

जप करते समय साथमें श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान करनेकी कोशिश आप करते हैं, किन्तु ध्यान न लगकर विषयोंका ही चिन्तन होता है। विषयोंका चिन्तन न होकर भगवान्‌का ध्यान होनेका उपाय पूछा सो ठीक है। भगवान्‌के ध्यानको सर्वोत्तम समझकर निष्कामभावसे विशेष तत्पर होकर करनेसे विषयोंका चिन्तन छूट सकता है। विषयोंमें दोष, दुःख एवं घृणा-दृष्टि करनेसे और वैराग्यवान् पुरुषोंका संग करनेसे भी विषयोंका चिन्तन छूट सकता है। उपर्युक्त अभ्यास करनेसे ही सब पापोंका एवं क्लेशोंका नाश होकर परमानन्द और परमशान्तिकी प्राप्ति हो सकती है। मुझे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु न समझकर अपना एक साधारण मित्र समझना चाहिये।

२-भगवान्‌की प्राप्तिके लिये भजनका ठेका करनेवाला सच्चा भक्त इसलिये नहीं है कि वह भगवत्प्रेम और भजनके रहस्यको नहीं समझता। जो समझता है उसे ठेका करनेकी क्या आवश्यकता है? भजन तो केवल भगवान्‌में अनन्यप्रेम होनेके लिये ही करना चाहिये। अनन्यप्रेम हो जानेपर भगवान् स्वयं ही मिले बिना नहीं रह सकते। इसीसे अनन्यप्रेम भगवान्‌के मिलापसे भी बढ़कर है। इस रहस्यको समझनेवालेका भजन, साधन, श्रद्धा, प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है।

३-विषयोंकी अभिलाषा एवं मोह और अन्तःकरणकी अशुद्धि आदि दोषोंकी वृद्धिमें मन्त्र-जपका परिणाम समझना बहुत ही अनुचित एवं भूल है। उपर्युक्त दोष तो मनमें सदा ही रहते हैं। कभी छिपे हुए रहते हैं और कभी प्रकट होकर उग्र रूप धारण कर लेते हैं। यदि उस समय आप भजन न करते तो सम्भव है उनका प्रकोप और भी अधिक होता।

४-ईश्वरके भजन बिना जो समय गया उसके लिये पश्चात्ताप करना और व्यर्थ गया समझना तो उचित ही है। किन्तु उसके लिये प्राणत्याग करना उचित नहीं, प्राणत्यागकी तो कभी इच्छा ही नहीं करनी चाहिये। भविष्यमें व्यर्थ समय न बिताना ही सच्चा पश्चात्ताप है। समयको अमूल्य समझकर कटिबद्ध होकर भजन-ध्यान करनेसे मूलसहित विषयासक्तिका नाश हो जाता है।

५-भगवान्‌के भक्तोंमें प्रेम होनेका और सांसारिक लोगोंसे प्रेम हटनेका उपाय पूछा सो इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

६-पुस्तक पढ़ते समय मन दूसरी तरफ जाता हो तो पुस्तकमें लिखी हुई बातको समझनेमें मन लगाना चाहिये। जिस विषयकी पुस्तक हो यदि उसको समझनेकी लगन हो तो मन उसमें जरूर लग जाना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अवगुण, अन्तःकरण जैसे-जैसे शुद्ध होगा, वैसे-वैसे हटते जायँगे; इसके लिये भी भगवान्‌से प्रार्थना करते रहना चाहिये।

७-जपका महत्त्व नहीं समझनेके कारण और साधनमें शान्ति और आनन्दका अनुभव नहीं होनेके कारण एवं पापोंकी अधिकताके कारण भजन करनेमें आलस्य और भजनमें अरुचि उत्पन्न होती है, अतः अच्छे पुरुषोंका संग करके जपका महत्त्व समझना चाहिये। श्वासके साथ जप करनेका अभ्यास करनेसे चित्तको शान्ति मिल सकती है। जपका अभ्यास करते-करते

अन्तःकरण शुद्ध होनेसे जपमें रुचि बढ़ सकती है। जबतक रुचि न हो तबतक विश्वास करके ही जप करते जाना चाहिये।

८-आसन लगाकर ईश्वरका ध्यान करनेकी चेष्टा करें, उस समय जप नहीं छोड़ना चाहिये। जप करते-करते ही ध्यान करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जप होता रहनेसे मनमें दूसरी फुरना कम होगी। फिर भी अगर मन दूसरी जगह जाय तो बार-बार वहींसे हटाकर भगवान्में लगानेका अभ्यास करना चाहिये।

९-भगवान्के भजन-ध्यानके रहस्यको समझनेका उपाय पूछा सो रहस्य जाननेवाले सज्जन पुरुषोंका संग करना चाहिये और इस विषयकी पुस्तकोंको पढ़नेका अभ्यास करना चाहिये, फिर अभ्यास करते-करते अन्तःकरण शुद्ध होनेसे रहस्य समझमें आ सकता है।

१०-कर्मोंका अनुष्ठान करते समय भगवान्को याद रखनेका उपाय पूछा सो हरेक कार्य करते समय भगवान्को अपने साथ समझकर उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये कर्म करनेका अभ्यास करनेसे ही ऐसा हो सकता है। ऐसा अभ्यास करना बहुत ही अच्छा है। अभ्यास करते-करते ही भगवान्की कृपासे ऐसा स्वभाव बन सकता है कि फिर अनायास भगवान्का स्मरण रह सके।

११-मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाको कलंकके समान समझनेका उपाय पूछा सो इनसे होनेवाली हानिका विचार करनेसे, भगवान्के भजन-साधनमें इनको बाधक समझनेसे और बार-बार इस तरहका विचार रखनेसे ऐसा हो सकता है।

१२-जो बात प्रकाशित की जाती है, उसका क्षय हो जाता है। इस तत्त्वको समझ लेनेसे अच्छे कामोंको प्रकाशित करनेकी प्रवृत्ति हट सकती है और बुरे कामोंको प्रकट करनेकी इच्छा हो सकती है।

१३-संसारी नाच-गानमें प्रेम होनेके कारण उनमें नींद नहीं आती, परन्तु उससे स्वास्थ्यमें बहुत हानि होती है और भजन-सत्संगमें प्रेम होनेपर उनमें भी नींद नहीं सताती और स्वास्थ्यमें हानि भी नहीं होती।

भगवान्‌के प्रेमी पुरुषोंका संग करनेसे, अन्तःकरण शुद्ध होनेसे और भगवान्‌की शरण लेकर भजनका अभ्यास करनेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

१४-अपना बिगाड़ करनेवालेपर भी क्रोध नहीं करना चाहिये। मनको समझाना चाहिये कि बुरा या बिगाड़ दूसरेके करनेसे नहीं होता। यह तो प्रारब्धसे होता है, फिर किसीका क्या दोष है? सब भगवान्‌के स्वरूप हैं, फिर मैं क्रोध किसपर करूँ? अपना अहित करनेवालेसे बदला लेनेकी इच्छासे उसका बुरा करनेकी चेष्टामें अपना ही नुकसान होता है। मनमें बुरी भावना करनेसे अन्तःकरण मैला होता है, इसलिये ऐसा नहीं करना चाहिये।

१५-जुआ खेलना बहुत बुरा है; इससे भजनमें बाधा पड़ती है, पाप बढ़ता है, इज्जत चली जाती है, कोई विश्वास नहीं करता, भगवान् भी नाराज होते हैं। जुआ खेलकर नल और युधिष्ठिर-जैसे बड़े-बड़े राजालोगोंको भी पश्चात्ताप करना पड़ा है। अतः अपने मनमें दृढ़ नियम करना चाहिये कि जुआ कभी भूलकर भी नहीं खेलूँगा।

१६-सत्य बोलनेका नियम एक दफे टूट गया तो फिर वैसा ही नियम लेना चाहिये और भगवान्‌से उसको सुरक्षित रखनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। मनमें ऐसा दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि भगवान्‌की कृपासे अब मैं इस नियमका ठीक-ठीक पालन कर सकूँगा।

१७-जुएमें जीतकर उस धनको धर्मके काममें लगानेकी इच्छा करना वैसा ही है जैसे पहले शरीरमें कीचड़ लगाना और फिर उसको धो डालनेकी इच्छा करना। ऐसे धनसे कभी धर्म नहीं बढ़ता, वह तो पापको ही बढ़ानेवाला होता है।

१८-समयका विभाग पूछा सो दिन-रात चौबीस घण्टेमें रात्रिमें छः घण्टे सोना चाहिये। सबेरे और सन्ध्या शौच, स्नान, भोजनादि शरीर-निर्वाहकी क्रियामें छः घण्टे लगाने चाहिये। जीविका चलानेके लिये न्यायसे द्रव्योपार्जनमें छः घण्टे लगाने चाहिये और एकान्त भजन-ध्यानमें छः घण्टे—ऐसा करना ठीक है। दूसरे काम करते समय भी भजन-ध्यान करनेकी कोशिश रहनी चाहिये।

सात्त्विक पदार्थ खानेका अभ्यास करना चाहिये और राजस, तामस पदार्थोंका त्याग करना चाहिये। इसका विस्तार शास्त्रोंमें लिखा है।

१९-ईश्वरसे प्रार्थना करनेसे भगवान् स्वयं ही सद्गुरुकी प्राप्ति करा सकते हैं। यही विश्वास करके प्रार्थना करते रहना चाहिये।

२०-सोलह नामवाले मन्त्रके साढ़े तीन करोड़ मन्त्रका जप करनेसे भगवान् निःसन्देह मिल जाते हैं—ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है और विश्वासपूर्वक निष्कामभावसे करनेसे ऐसा होना सम्भव भी है, पर मैंने करके नहीं देखा है।

२१-माता-पिताकी आज्ञाकी बाबत पूछा सो और सब कामोंमें तो माता-पिताका हुक्म पूरा-पूरा मानना चाहिये; परन्तु वे यदि भजन-ध्यानके लिये मना करते हों तो यह बात नहीं माननी चाहिये। क्योंकि यह माननेमें उनका भी नुकसान है। उनको शान्तिपूर्वक समझाना चाहिये, सेवा करके प्रसन्न करना चाहिये। उनका सामना

नहीं करना चाहिये और कड़ा जवाब भी नहीं देना चाहिये। उनका भी भजन-ध्यानमें प्रेम हो, ऐसी कोशिश करनी चाहिये। स्वयं जो भजन-ध्यान करे वह उनसे छिपाकर गुप्तभावसे करनेका अभ्यास डालना चाहिये, परन्तु भजन-ध्यान नहीं छोड़ना चाहिये। यदि वे इसके लिये गाली दें या शाप दें तो उसे शान्तिसे सुन लेना चाहिये। उससे कुछ भी हानि नहीं हो सकती। इसमें प्रह्लादका उदाहरण याद कर लेना चाहिये। परन्तु खयाल रहे कहीं अभिमानमें आकर या झूठा प्रह्लाद बनकर उनका अपमान न कर बैठें। माता-पिताका अपमान करना और उनको कड़ी जबान कहना बहुत बुरा है। बहुत संकट पड़नेपर भी भजन-ध्यान नहीं छोड़ना चाहिये। यही तो परीक्षाका मौका है, अगर इसमें फेल हो गये तो फिर क्या है?

२२-शास्त्र-ग्रन्थ देखते समय माताके पूछनेपर झूठ नहीं बोलना चाहिये, बल्कि चुप रह सकते हैं या किसी दूसरे समय पुस्तक देख सकते हैं। झूठ बोलनेकी कोई जरूरत नहीं। झूठ बोलनेसे पाप जरूर होता है और कोई फायदा भी नहीं होता। बात तो सच्ची ही कहनी चाहिये। उसके लिये गाली सुननी पड़े या नुकसान सहना पड़े तो कुछ हर्ज नहीं। आपने मांस-भक्षण छोड़ दिया, यह बहुत ही अच्छा काम किया। इस नियमका दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिये।

२३-कभी भूलकर या दूसरेकी आज्ञासे भी मांस-भक्षणके कार्यमें किसी प्रकारसे भी सहायता नहीं देनेका ही खयाल रखना चाहिये।

२४-आपके मनमें जो शंका उठे आप खुशीसे पूछ सकते हैं, परन्तु अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये, क्योंकि मुझे समय बहुत कम मिलता है। इसलिये, उत्तर देनेमें विलम्ब हो सकता है। जवाब बहुत जल्दीमें लिखा गया है।

[४]

गीता-शास्त्र बड़ा ही गहन है, बड़े रहस्यका विषय है। इसका अभ्यास करते-करते नये-नये भाव पैदा होते रहते हैं, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। ऐसा होना इस ग्रन्थके अनुरूप ही है। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे लिखा जाता है।

१-भगवदर्पण-बुद्धिमें मोहयुक्त कर्तापनका अभिमान नहीं रहता, अभिमानशून्य निर्दोष कर्तापनमात्र रहता है; वह भी साधन करते-करते अन्तमें समाप्त हो जाता है। 'अहंकारविमूढात्मा' में जो कर्तापनका अभिमान बताया गया है यह मोहपूर्ण है और वहाँ विषय भी अज्ञानका ही है। अर्पण अपनी वस्तु की जाती है। यही क्यों, भूलसे अपनी मानी हुई दूसरेकी वस्तुको, जिसकी है उसे दे देना क्या अर्पण नहीं है? क्या भरतजीकी भाँति स्वामीकी आज्ञासे स्वीकार किया हुआ राज्य समयपर स्वामीके चरणोंमें सौंप देना समर्पण नहीं है? जिस प्रकार भरतजी समस्त राज-कार्यका भार श्रीरामपादुकाके सहारे चलाते थे, उसमें अपनी सामर्थ्य कुछ भी नहीं समझते थे, केवल अपनेको निमित्तमात्र ही मानते थे, उसी प्रकार समस्त कार्य करनेवालेका कर्तापनमात्र क्या दोषी हो सकता है? कभी नहीं। जो साधक सब वस्तुओंको ईश्वरकी ही समझता है और समस्त संसारका संचालन उसीकी शक्तिसे होता हुआ देखता है उसके मनमें अर्पण करनेका कुछ अभिमान थोड़े ही होता है, वह तो अपनेको केवल निमित्तमात्र समझता है।

२-'**वासुदेवः सर्वम्**' माननेवाले महात्मा पहले असंख्य हो चुके हैं। उनके नाम कहाँतक लिखे जायँ। सनकादिको जय-विजयपर क्रोधका भाव हुआ—यह बात कहनेसे शास्त्रकारका क्या प्रयोजन है, इसका पता नहीं है। वास्तवमें महात्माओंको

क्रोध हो नहीं सकता—क्रोधविषयक कथाएँ तो मिलती हैं, पर उनमें अवश्य कुछ रहस्य हो सकता है। अपनेको तो सिद्धान्त यही समझ लेना चाहिये कि वास्तवमें महात्मामें काम-क्रोधादि दोष नहीं रह सकते। अगस्त्य आदिका राक्षस-वधके लिये चेष्टा करना जगत्-हितकी दृष्टिसे था, अतः उसमें कुछ शंकाकी बात नहीं है। वैसे तो खुद वासुदेवने ही बहुतोंका वध किया-कराया है, फिर सबको वासुदेव समझनेवाले महात्मा वैसी चेष्टा करें, इसमें क्या अनुचित है? सब महापुरुषोंका स्वभाव एक-सा नहीं होता। सब अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार ही जगत्-हितकी चेष्टा किया करते हैं। जगत्-हितके लिये न्याययुक्त राक्षस-वधकी चेष्टा भी बुरी नहीं है। उसमें स्वार्थकी मात्रा नहीं होनी चाहिये। क्या माता-पिता अपने बालकको उसके और जगत्के हितके लिये ताड़ना नहीं दिया करते? और क्या उनका वैसा करना दया नहीं है?

३-मेरी समझमें तो यही मानना उचित है कि '**मामनुस्मर युध्य च**', इस उपदेशको अर्जुन पूर्णरूपसे कार्यमें ला सके थे। स्मरण रहते हुए जो उनको शोक और क्रोध होनेका प्रसंग आता है उसके विषयमें ऐसा समझना चाहिये कि वह लोकसंग्रहके लिये स्वाँगकी तौरपर था, वास्तवमें नहीं।

आजकलके लोग जो कार्य करते हुए भगवत्-स्मरण रखनेका भाव व्यक्त किया करते हैं उनकी कैसी स्थिति है— इसका हाल तो वे ही जान सकते हैं, मैं इस विषयमें क्या लिख सकता हूँ। हाँ, यह मैं अवश्य कह सकता हूँ कि भगवत्-स्मरण करते हुए कार्य हो सकता है, इसमें कोई शंका नहीं। क्योंकि यदि इस प्रकार कार्य करते हुए स्मरण हो ही नहीं सकता तो भगवान् ऐसा उपदेश ही कैसे देते? यह बात अवश्य है कि सबकी प्रकृति

एक-सी नहीं होती, अतः हर एक साधक निरन्तर स्मरण रखते हुए कार्य नहीं कर सकता।

भगवान्‌के स्मरणमें रोमांच अधिक साधकोंको हुआ करता है; परन्तु अश्रुपात सबके नहीं होता, इसमें स्वभावका भेद है। सभी साधकोंके शरीरमें ऊपरी सभी चिह्न होवें ही, यह कोई खास नियम नहीं है। आपके लिये आँसुओंका रोकना असाध्य हो जाता है, यह आपके स्वभावकी विशेषता है। बाहरी चिह्नोंद्वारा यदि भगवत्प्रेमका प्रकट हो जाना बुरा मालूम होता हो तो ऐसा न होनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रेमको गुप्त रखना तो अच्छा ही है। चेष्टा अवश्य करनी चाहिये; इसपर भी प्रकट हो जाय तो भगवान्‌की मर्जी, उसका उपाय भी क्या और चिन्ता भी क्यों?

४-ज्ञानीको मायाकृत विकार होना सम्भव नहीं है। गीतोपदेश सुननेके बाद भी जो अर्जुनमें क्रोध, मोहादि विकारोंके होनेकी कथा आती है, इसमें यही समझना ठीक मालूम होता है, कि वह सब बातें लीलामात्र स्वाँगकी तरह थीं। बाहरी चरित्रोंसे यह पता लगाना कि अमुक व्यक्तिको ज्ञान हुआ था या नहीं, असम्भव है। गीताका उपदेश सुननेके बाद भी अर्जुनको ज्ञान नहीं हुआ था, ऐसा मानना मेरी समझमें ठीक नहीं है।

५-गीता अ० ६ श्लोक १० से १४ तक एवं २४ से २६ तकमें बताया हुआ साधन संसारी झंझट छोड़कर लगातार कई दिनोंतक करना अयुक्तिसंगत या अशास्त्रसम्भव तो नहीं है, परन्तु साधकसे ऐसा होना सहज बात नहीं है। यदि किसीका स्वभाव ही ऐसा बन जाय और किसी प्रकारके विघ्न बिना ही ऐसा साधन कोई कर सके तो बहुत आनन्दकी बात है; परन्तु कोई हठसे ऐसा करनेकी चेष्टा करे तो हो नहीं सकता, क्योंकि कभी नींद

सतावेगी, कभी शरीर अकड़ने लगेगा और कभी मन चक्कर लगाना आरम्भ कर देगा और यदि ऐसा हुआ तो फिर वह साधन कहाँ रहा? भगवान्ने जो युक्ताहारविहारकी बात कही है, वह बहुत ही ठीक है। साधारण नियम तो ऐसा ही होना चाहिये; फिर यदि किसीका स्वभाव ऐसा बन जाय कि दस-पन्द्रह दिनोंतक लगातार एक आसनसे बैठ सके, बिना भोजन और जलपानके रह सके, निद्राकी आवश्यकता ही न हो तो उसके लिये वही युक्त है; क्योंकि युक्त शब्दका अर्थ भी तो कम व्यापक नहीं है; जिसकी प्रकृतिके जो उपयुक्त हो, उसके लिये वही युक्त हो जायगा।

६-नाम-जापकोंसे भी जो मिथ्या-भाषणादि दोष होते हुए देखनेमें आते हैं, इसका कारण भगवान् और उनके नामका प्रभाव न जानना और विश्वासका न होना तो मुख्य ही है, परन्तु सकाम भाव भी उन्नतिमें रुकावट डालनेवाला है। विश्वासकी जाँचके लिये हठसे जान-बूझकर प्राणोंको संकटमें डालनेकी आवश्यकता नहीं। विश्वासकी जाँच तो मनुष्य पद-पदपर कर सकता है, जिस मनुष्यको भगवान्के नाम-स्मरणके साथ-साथ यह दृढ़ विश्वास होगा कि भगवान् सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वव्यापी हैं, परम न्यायकारी हैं, वह कोई भी ऐसा कार्य कैसे कर सकता है जो भगवान्की आज्ञाके विरुद्ध हो?

७-मेरी समझमें पवित्र तीर्थस्थानोंमें जाकर वहाँ रहकर अपना समय भगवान्के भजन-स्मरण आदिमें लगाना तो बहुत ही उत्तम है, परन्तु हठसे 'अनशन-व्रत' करके मरनेसे विशेष लाभ नहीं दीखता; क्योंकि भगवान् हठ नहीं चाहते, सच्चा प्रेम और विश्वास चाहते हैं। भगवान्के प्रेमकी भिक्षा तो कहीं भी करनेमें हानि नहीं है, फिर तीर्थोंमें तो जाना ही इसीलिये होना चाहिये।

वृन्दावन-सेवाकुंजके विषयमें मेरा कोई अनुभव नहीं है; मैं इसका जानकार ही नहीं, तब अपनी धारणा क्या बतलाऊँ? यदि किसीका सच्चा विश्वास हो तो भगवत्-दर्शन होना मेरी समझमें असम्भव नहीं है।

८-तीव्र साधनकी महिमा तो सभी शास्त्र कहते हैं। जहाँतक हो सके साधकको अपना साधन तीव्रसे भी तीव्र बनाना चाहिये। पर तीव्र साधनका अर्थ क्या है, इसे भलीभाँति समझनेकी आवश्यकता है। बिल्वमंगलकी भाँति आँखोंको फोड़ लेना या किसी प्रकारका निमित्त बनाकर प्राणोंका त्याग कर देना तीव्र साधनका उदाहरण नहीं है। तीव्र साधनमें उदाहरण लेना चाहिये भक्त प्रह्लादका या भक्त ध्रुवका। भगवत्-शरणागतिमें प्राणोंकी ममताको तो स्थान ही नहीं है, फिर भक्तको भय हो ही कैसे सकता है? प्रह्लादमें आपको सब-के-सब उदाहरण एक ही जगह मिल जायँगे। जान-बूझकर आत्महत्या करनेका प्रयत्न करना निर्भयता या प्राणोंके मोहका अभाव नहीं है। इसकी परीक्षा तो अपने-आप न्याययुक्त प्राप्त हुए प्राणसंकटके समय ही हो सकती है। गीतारहस्यकारने आत्मज्ञानके लिये जल्दी करनेके लिये किस उद्देश्यसे कहा है, यह तो मुझे मालूम नहीं; पर मेरी समझमें तो मनुष्यको अपना साधन तीव्र-से-तीव्र बनाना चाहिये। इसमें शिथिलता करना किसी तरह भी लाभप्रद नहीं होता। अतः साधनका फल मिलनेमें देर होती देखकर भी ऊबना कभी नहीं चाहिये। फलके लिये जल्दबाजी करनेवाला साधक भूल कर सकता है। ध्यानसहित नित्य-निरन्तर जप ही तीव्र साधन कहा जा सकता है।

[५]

प्र०—क्या भगवान्‌के लिये दीर्घकालीन रोगोंको मौतका कारण बनानेकी अपेक्षा मौतको सशरीर भेजकर मनुष्यकी आत्माको मँगवा लेना, अच्छी व्यवस्था नहीं थी? क्योंकि गरीब मनुष्य द्रव्यादि साधनोंके अभावसे पूर्ण सन्तोषपूर्वक रोगीकी ओषधि वगैरहसे सेवा नहीं कर सकते एवं इन रोगोंको मृत्युका कारण समझकर वे सर्वदा अपने कर्तव्यच्युत होनेका पश्चात्ताप किया करते हैं। यदि मौत सशरीर आकर आत्माको ले जाय तो यह प्रश्न ही सामने नहीं रहेगा एवं किसीको अनुताप करनेकी ही आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि बीमारीको पूर्वकर्मोंका फल कहें तो फिर मनुष्य बचपन या यौवनमें ही बीमार क्यों नहीं हो जाता? जीवनके अन्तिम समयमें बीमार होना सन्देहमें डाल देता है कि कहीं मौत ही बहाना करके न आती हो?

उ०—मनुष्य अल्पज्ञ है, भगवान्‌की कृतियोंके गूढ़ रहस्यका उसको पता नहीं है, अतः भगवान्‌की व्यवस्थामें सन्देह करना या त्रुटि निकालना मनुष्य-कर्तव्यके बाहरकी बात है। ईश्वर आपकी उपर्युक्त व्यवस्थाको ठीक नहीं समझते, यदि यह व्यवस्था ठीक होती तो वे इसीका उपयोग करते। ईश्वरकी प्रत्येक व्यवस्था ज्ञान और न्यायपूर्ण होती है, उसमें कोई कमी नहीं होती। कमीका अनुभव करना ही अपनी अल्पज्ञताका परिचय देना है। रोगोंकी उत्पत्ति मृत्युके लिये प्रधानतया नहीं होती। दीर्घकालतक रोगोंका उपभोग मनुष्यके कर्मोंका फल है और मृत्यु भी केवल रोगसे ही नहीं होती और भी बहुत-से कारणोंसे होती है। रोगसे भी मौत हो जाती है। दीर्घकालीन रोग विशेषतासे तो हमारे पापोंका ही लक्ष्य कराते हैं और मौत भी हमारे भारी पापका ही फल है। ईश्वर सशरीर मृत्युको कितनी

जगह भेजते और यदि इतनी बड़ी संख्यामें मृत्युको सशरीर जाना पड़ता तो वह भी एक दूसरी सृष्टि हो जाती। इतनेपर भी मान लीजिये कि ईश्वर यदि यही प्रबन्ध करते तो क्या दूसरोंको इसमें भी शंका करनेकी गुंजाइश नहीं मिलती? सम्भव है इसमें भी हजारों सन्देह मनुष्यके मनमें उठ खड़े होते। सन्देहका नाश ज्ञानके बिना कभी नहीं हो सकता। ईश्वरके कृत्यमें सन्देहका कारण भी अज्ञान ही है, उसका नाश पूर्ण ज्ञानसे ही सम्भव है। उपनिषद्‌में कहा है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥*

(मुण्डक० २।२।८)

अब रही गरीबोंके कर्तव्य-च्युत होनेकी बात, सो साधनके अभावसे रोगीकी भलीभाँति ओषधि वगैरहसे सेवा न कर सकनेके कारण गरीब मनुष्य कर्तव्य-च्युत नहीं होते। कर्तव्य-पालनमें गरीब और अमीरका प्रश्न ही नहीं है। सामर्थ्यके अनुसार सेवा करना ही कर्तव्य-पालन है। अतः साधनके अभावमें कर्तव्य-च्युत होनेके लिये पश्चात्ताप करना भूल है।

ओषधि और रुपये मनुष्यको मौतके मुँहसे नहीं बचा सकते। यदि ऐसा ही होता तो राजाओं और धनियोंकी मौत कभी नहीं होती। मौत धन, जन और ओषधिसे दूरकी वस्तु है। यह अपने पूर्व-कर्मोंसे ही होती है, अतएव मृत्युमें कर्तव्य-च्युत होनेकी धारणा करना सर्वथा भूल है।

यदि कहें कि फिर दवा आदिका व्यवहार क्यों किया जाता है तो इसका कारण यह है कि साधारणतः रोग दो प्रकारके होते

* उस परमात्माके साक्षात् होनेपर हृदयकी चिज्जडग्रन्थिका भेदन हो जाता है और सारे संशय मिट जाते हैं एवं सम्पूर्ण पापोंका विनाश हो जाता है।

हैं—कर्मजन्य और दोषजन्य। दोषजन्य रोग दवा आदिके सेवनसे नाश हो जाते हैं पर कर्मजन्य रोग भोगसे ही नाश होते हैं। ओषधि वगैरहसे न मिटनेवाले रोगोंको कर्मजन्य मानना चाहिये।

शीतोष्णादिसे उत्पन्न आगन्तुक बीमारियाँ प्राय: दोषजन्य होती हैं। अत: इनके नाशके लिये ओषधिका व्यवहार करना युक्तियुक्त ही है।

बचपन और यौवनमें बीमार न होनेका तो प्रश्न ही नहीं बनता, क्योंकि बहुत-से मनुष्य इस अवस्थामें भी ओषधियोंसे न मिटनेवाले कर्मजन्य बीमारियोंका भोग करते दिखलायी पड़ रहे हैं। कर्मजन्य रोग पूर्वकर्मोंके ही फल हैं और वे सभी अवस्थामें हो सकते हैं। अत: सेवा या ओषधि-उपचारकी कमी मृत्युका कारण नहीं हो सकती। सेवा और ओषधिका पूर्ण प्रबन्ध रहते हुए भी मनुष्योंकी मृत्यु होती है। वास्तवमें तो मृत्यु किसी रोगके बहानेसे ही आती है यह ठीक नहीं है, क्योंकि बिना बीमारीके भी बहुत-से मनुष्योंकी मृत्यु होती देखी जाती है। मृत्युका कारण तो पूर्वके भारी पाप ही हैं। अज्ञानीजन बाहरी कारणोंको ही अपनी मृत्युके निमित्त मान लेते हैं।

प्र०-ईश्वरने अन्य शारीरिक अवयवोंके अनुसार आत्माको भी दृश्य वस्तु क्यों नहीं बनाया? इससे जिनको आत्माके अस्तित्वमें प्रमाणकी आवश्यकता थी, उन्हें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता?

उ०-आत्मा अनादि, चेतन, नित्य, सनातन और ईश्वरका अंश है। इसको किसीने बनाया नहीं है। यह स्वत:सिद्ध सदासे बना हुआ ही है। यदि ईश्वरके द्वारा आत्मा बनाया जाता तो यह प्रश्न हो सकता था, अमूर्त आत्माके लिये यह प्रश्न ही युक्तियुक्त नहीं है।

आत्माके अस्तित्वमें तो प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। जीवित और मृत मनुष्यका अन्तर ही आत्माका स्पष्ट द्योतक है। दूसरे

शारीरिक अवयवोंकी तरह आत्मा दृश्य वस्तु नहीं हो सकती। क्योंकि शारीरिक अवयव अनित्य, नाशवान्, जड एवं विकारी हैं, पर अव्यक्त आत्मा इनसे अत्यन्त विलक्षण, नित्य, चेतन और निर्विकार है। इसलिये वह इस अनित्य चर्म-चक्षुओंसे दिखलायी पड़ने योग्य नहीं हो सकती।

प्र०-बिल्ली, चूहे, कौवे और कुत्तोंको क्या अधिकार है कि वे आकर चुपचाप हमारे दूध, घी और अन्य खाद्यपदार्थोंको खा या पी जायँ? क्या यह चोरी नहीं है? वे इन चीजोंको अलमारी आदिमें रखनेका व्यर्थ परिश्रम मनुष्योंसे करवाते हैं। मच्छर और साँप जिनको हम कोई नुकसान नहीं पहुँचाते, हमें क्यों डँसते हैं? और हमारी बीमारी और मृत्युके कारण क्यों बनते हैं? प्राय: देखा जाता है कि साँप चारपाईपर चढ़ जाते हैं और बेचारे निर्दोष मनुष्यको काट खाते हैं। यदि साँपोंको भगवान् भेजते हैं, तो क्या यह भगवान्के हाथों अचानक घात नहीं है? और क्या भगवान्के लिये यह लज्जाका कारण नहीं है?

यह तो सभी जानते हैं कि मक्खियाँ बहुत-से संक्रामक रोगोंकी कारण हैं, उन्हें हमारी सुन्दर कटोरियों और आरामकी वस्तुओंपर बैठने एवं उन्हें संक्रमण करनेका क्या अधिकार है? यदि भगवान्ने उनको रचा है तो उन्हें इनके भोजनका प्रबन्ध भी करना चाहिये, यह तो दिन-दहाड़े डकैती है कि वे मनुष्योंका भोजन खा जायँ?

उ०-बिल्ली, चूहे, कौवे, कुत्ते आदि जीवोंको भी दूध, घी, अन्न आदिके खाने-पीनेका अधिकार है। इनके लिये व्यवस्था करना मनुष्यका ही कर्तव्य है, पर मनुष्योंने अपने कर्तव्यका त्याग कर दिया है। इसीलिये बेचारे इन जीवोंको इस प्रकारकी क्रिया करनी पड़ती है। मनुष्यकी भाँति ये जीव स्वयं खाद्यपदार्थोंका

उपार्जन नहीं कर सकते, न इनके पास वैसे साधन ही हैं, ये धर्मज्ञानहीन हैं, इसीलिये इनके यह कर्म चोरीमें शामिल नहीं किये जा सकते। इनके पालनरूप अपने इस कर्तव्य-च्युत होनेके कारण ही मनुष्योंको अलमारी आदिमें वस्तुओंकी रक्षा करनेके लिये परिश्रम उठानेकी आवश्यकता पड़ती है।

परम दयालु, न्यायकारी ईश्वरकी प्रेरणासे ही प्राय: मच्छर और साँप हमारे पूर्व-पापोंके कारण हमलोगोंको डँसते हैं तथा बीमारियोंकी उत्पत्ति और मौत आदिके हेतु भी हमारे पूर्वके पाप ही हैं। इसमें किसीका दोष नहीं है। जैसे न्यायकारी राजा अपराधीको उसके हितके लिये दोषानुसार ही अपने कर्मचारियों-द्वारा जेल या फाँसी देता है; किन्तु राग-द्वेषसे रहित होनेके कारण राजा दोषी नहीं है। वैसे ही ईश्वर मनुष्योंको उनके हितके लिये अर्थात् उन्हें पापमुक्त करनेके लिये पूर्वकृत पापोंके अनुसार साँपादिके द्वारा दण्ड भुगताते हैं, परन्तु दोषी नहीं हैं।

चोरी, डकैती, खून आदि करनेवाले अपराधीके किये हुए अपराधोंको तो हमलोग प्रत्यक्ष देखते हैं, इसलिये न्यायकारी राजा एवं राजकर्मचारियोंपर हमारे मनमें दोषकी आशंका नहीं होती। किन्तु साँप आदिसे डँसे जानेवाले मनुष्यको निर्दोषी समझकर साँप आदि एवं ईश्वरपर जो दोष लगाया जाता है यह हमारा भ्रम है; क्योंकि हम उसके पूर्वकृत पाप-कर्मोंसे अनभिज्ञ हैं। अतएव निश्चय समझना चाहिये कि ईश्वरके द्वारा निर्दोषीको कभी दण्ड नहीं दिया जा सकता।

पर यहाँके न्यायालयोंकी भाँति, ईश्वरके न्यायालयसे दण्डकी सूचना पहले नहीं दी जाती और ईश्वर अन्तर्यामी हैं इसलिये वहाँका न्याय निर्भ्रान्त होता है; राग-द्वेषरहित नि:स्वार्थ ईश्वरके किये हुए प्रत्येक विधानमें पद-पदपर परम दया भरी हुई है।

इसलिये उसके कृत्यमें अचानक घात या लज्जाकी कोई आशंका ही नहीं हो सकती। मक्खियोंके प्रश्नका तो इसी उपर्युक्त उत्तरसे अपने-आप ही समाधान हो जाता है तथा कुत्ता, बिल्ली और मच्छरादि जीवोंके दृष्टान्तसे भी समझ लेना चाहिये।

प्र०-क्या भगवान् हमें अहिंसा सिखलाते हैं? यदि हाँ, तो उन्होंने सिंह, चीता, बाघ, मगरमच्छ आदि हिंसक जीवोंको क्यों बनाया? और अब तो यह सभी जानते हैं कि प्रत्येक वनस्पतिमें प्राण है। अतएव यदि हम गेहूँ, जौ और चावल इत्यादि खाते हैं तो हम भी उसी प्रकार हत्या करते हैं जिस प्रकार वे मांसाहारी जीव करते हैं। क्या आप मुझसे सहमत हैं?

उ०-ईश्वर सर्वदा अहिंसाका ही उपदेश देते हैं। जीवोंके पापोंका दण्ड देनेके लिये ईश्वरने हिंसक जीवोंकी रचना की है। अत: ये जीव दोषी नहीं होते। पशु होनेके कारण इन्हें ज्ञान भी नहीं है इसलिये भी इनको पाप नहीं लगता। परन्तु मनुष्योंके लिये यह नियम लागू नहीं हो सकता, उन्हें मांसाहार करनेसे पाप लगता है। क्योंकि मनुष्यको अपने कर्तव्यका ज्ञान है और मनुष्य-जाति मांसाहारके लिये नहीं बनायी गयी। यद्यपि गेहूँ, चावल आदि खाद्यपदार्थोंमें भी हिंसा है पर मांसाहारीकी अपेक्षा बहुत ही कम है। क्योंकि पशु आदि जीवोंकी हत्यामें गेहूँ, चावल आदि पौधोंके नाशकी अपेक्षा बहुत ही ज्यादा तकलीफ होती है। इसीलिये हमारे शास्त्रकारोंने इस हिंसाकी निवृत्तिके लिये पंचमहायज्ञादि प्रायश्चित्त बतलाये हैं (गीता ३।१३)। इन प्रायश्चित्तोंको न करनेवालोंके लिये ही यह हिंसा लागू पड़ती है।

प्र०-क्या मनुष्यकी आयु एक निश्चित वस्तु है या यह स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमोंपर चलनेसे बढ़ायी जा सकती है?

उ०-पूर्वकृत कर्मोंसे बने हुए प्रारब्धके अनुसार मनुष्यकी

आयु निश्चित की हुई ही होती है। परन्तु नये बलवान् कर्मोंसे आयु घट-बढ़ भी सकती है। योगी योगके साधनोंद्वारा इच्छामृत्युतककी सामर्थ्य प्राप्त कर सकते हैं और अज्ञानीजन क्रोधके वश होकर अकालमें भी मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु ब्रह्मचर्यादि नियमोंका पालन करनेवाला अकालमृत्युको नहीं प्राप्त होता।

प्र०-क्या कोई ऐसा (अनुभवपूर्ण) प्रमाण है जिससे यह सिद्ध हो सके कि स्वर्ग और नरक भी हमारी पृथिवी या अन्य किसी ग्रहके अनुसार ही भौतिक लोक हैं?

उ०-स्वर्ग और नरक इस पृथिवीकी भाँति ही भौतिक लोक हैं। इसके लिये शास्त्र प्रमाण हैं और वह श्रद्धापर ही निर्भर है। प्रत्यक्ष एवं अनुभवपूर्ण बलवान् युक्ति नहीं है जिसके द्वारा यह सब प्रत्यक्षकी भाँति दिखलाये जायँ।

अतएव शास्त्र-प्रमाणको ही प्रमाण मानना चाहिये; क्योंकि शास्त्रके रचयिता ऋषि-मुनि प्रायः सभी त्रिकालज्ञ अनुभवी थे।

[६]

पत्र मिला, आप क्षयप्रधान रोगोंसे ग्रसित हैं; इसके लिये पथ्य और ओषधिकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। शरीरके असमर्थ होनेके कारण आपको दूसरोंसे सेवा करवानी पड़ती है, इसके लिये मनमें दुःख एवं ग्लानि नहीं रखनी चाहिये। ऐसी अवस्थामें इसका कोई उपाय न रहनेके कारण मनमें चिन्ता रखनेसे क्या फायदा है? अब आपको ईश्वर-स्मरण नहीं भुलाना चाहिये। पूर्वकी ईश्वर-विस्मृतिका पश्चात्ताप न कर अब विशेष चेष्टासे भगवत्-स्मरणमें रात-दिन लग जाना चाहिये। यही उसका असली पश्चात्ताप है। आपने लिखा, रोगने मेरी आँखें खोल दीं सो अच्छी बात है; पर जबतक साधनमें ढीलापन है तबतक आँखें नहीं खुली ही समझनी चाहिये। खैर, अब तो जोरसे साधनमें लगना चाहिये। क्योंकि एक तो आप कष्टसाध्य शारीरिक रोगमें फँसे हैं और दूसरे मानसिक रोग तो लगे ही हुए हैं, इस हालतमें शरीरका कोई भरोसा नहीं है। अतः जबतक प्राण हैं, आत्म-हितके लिये कटिबद्ध होकर लग जाना चाहिये।

रोगसे ग्रसित होनेकी वजहसे आप दोनों वक्त सन्ध्या नहीं कर सकते, एक वक्त ही करते हैं, सो भी ठीक है। इस रोगमें स्नानादि निषिद्ध हैं, इसलिये आप मानसिक सन्ध्या कर सकते हैं। विशेष अशक्त-अवस्थामें सोते हुए मन्त्र-जपसे भी काम चल सकता है। रोगके कारण आप बैठनेमें अशक्त हैं और इन्द्रियों एवं शरीरसे आप कोई चेष्टा नहीं कर सकते और भगवान्‌की सेवा एवं दर्शनकी आपकी इच्छा है, इसके लिये उपाय पूछा सो ठीक है। इस हालतमें ईश्वरको हर समय निष्कामभावसे याद रखना ही उनकी असली सेवा है। मनसे याद रखना; वाणीसे नाम जपना ही मुख्य है। अतएव उसे सब समय निरन्तर याद रखनेकी चेष्टा

करनी चाहिये। इसमें विशेष सहायताके लिये आपके सोनेके कमरेमें अपने सामने भगवान्‌के चित्र टँगवा लेने चाहिये और भगवान्‌के गुण-प्रेम-प्रभाव आदिकी बातें सुननी चाहिये। भगवान् सब स्थानमें व्यापक हैं, अतएव जहाँ मन और नेत्र जायँ, वहीं उनको प्रत्यक्ष ही देखना चाहिये। यह तो निरन्तर अभ्यासकी बात हुई। अब नियमित अभ्यासके सम्बन्धमें आपके प्रश्नोंके उत्तर ये हैं—

१-यदि सम्भव हो तो एकान्तमें मौन हो तीन घण्टे ध्यान करना चाहिये और प्रातः १०८ एवं सायं १०८ राम-नामकी माला जपनी चाहिये, इसमें आपको २.३० घण्टे लग सकते हैं। अलग ध्यान न कर सकें तो राम-नामकी माला जपनेके समय ही उनका ध्यान रखना चाहिये। ऐसा अभ्यास दोनों वक्त करनेसे, ध्यानसहित २१६ मालाका जाप हो सकता है।

२-जप-मन्त्र राम-नाम ही होना चाहिये।

३-मृत्यु और भगवान्‌को हर समय याद रखनेसे तथा मनके प्रतिकूल पदार्थ और घटनाको भगवान्‌का विधान समझनेसे क्रोधका नाश हो सकता है। उपवासादि भी इसके उपाय हैं, पर आपकी इस हालतमें ये नहीं बतलाये जा सकते। वैद्यकी व्यवस्था ठीक न होनेसे क्रोध बिलकुल न होना चाहिये, उस अव्यवस्थाको भगवान्‌की आज्ञासे ही होती हुई समझ लेना चाहिये; फिर क्रोधका कोई हेतु नहीं रह जायगा। वास्तवमें तो शरीर नाशवान् है, पर कुछ समयके लिये स्थायी भी मान लिया जाय तो प्रारब्ध ही इसमें बलवान् है। वैद्य और औषध तो निमित्त हैं, इनपर दोषारोपण करना भूल है। इस बातको समझ लेनेपर चिन्ता, भय, क्रोधके लिये कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

४-प्रेम होनेसे ही भगवान्‌में मन रमता है। प्रेम होनेके लिये

भगवान्‌की आज्ञाका पालन, उनके दिये सुख-दुःखोंमें प्रसन्न रहना, उनके गुण और प्रेम-प्रभावकी कथाओंका स्मरण-मनन यथासमय पठन-पाठनादि करना। उनके नामका जप और स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

आप ईश्वर-दर्शनकी इच्छा रखते हैं, यह उत्तम बात है; इसके लिये आप प्रभुसे करुणापूर्ण गद्‌गद वचनोंमें प्रार्थना करें। वे सर्वसमर्थ हैं, उनकी दयासे दर्शन होना कोई बड़ी बात नहीं। मुझमें आशीर्वाद देनेकी योग्यता नहीं है।

दो बातनको भूल मत, जो चाहत कल्यान।
नारायन इक मौतको, दूजे श्रीभगवान॥

[७]

पहले आपका दो वर्ष पूर्व एक पत्र आया था, कदाचित् हमने उसका जवाब भी दिया था। वह आपको मिला या नहीं, मालूम नहीं। आप प्रसन्न होंगे। आपका साधन कैसे चल रहा है? कल्याण आप बराबर पढ़ते होंगे।

आप श्रीसियारामजीका जप करते होंगे। जपकी विधि आपके गुरुजीने जो आपको बतलायी है उसीके अनुसार करना चाहिये। मैं गुरु होनेके योग्य अधिकारी नहीं हूँ। मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। आपके प्रेमके कारण मैं आपको मित्रकी हैसियतसे राय देता हूँ कि सबसे उत्तम विधि 'प्रेम' है। इसलिये स्वार्थको त्यागकर, श्रद्धापूर्वक, प्रेममें मुग्ध होकर सियारामका जाप करना चाहिये। यही सबसे उत्तम विधि है। यदि प्रेम न हो तो प्रेमके लिये निष्कामभावसे सियारामका जप नित्य-निरन्तर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे अन्तःकरण शुद्ध होकर भगवान्का प्रभाव जाना जा सकता है। प्रभाव जाननेसे भगवान्में श्रद्धा और श्रद्धासे प्रेम होना स्वाभाविक ही है।

आपके मिलनेकी इच्छा थी पर मिलना हुआ नहीं, इसमें प्रारब्ध ही प्रधान हेतु है।

इस कार्यमें सद्गुरुकी अवश्य ही आवश्यकता है, पर वे मिलते हैं भगवान्की दयासे। यों तो भगवान्की दया सबपर है ही, परन्तु उनकी वह दया भगवान्के शरण होनेसे ही फलती है। अतः सद्गुरुकी प्राप्तिके लिये भगवान्से एकान्तमें प्रेमभरी हुई गद्गदवाणीद्वारा सविनय प्रार्थना करनी चाहिये।

सद्गुरुकी प्राप्तिके अभावमें शास्त्र भी गुरु ही है। अतएव सत्-शास्त्रोंका विचार नित्यप्रति करना चाहिये; क्योंकि इस समय इसके अभ्यासमें सब प्रकारकी सुगमता है।

आपने जबसे सियारामका जप करना आरम्भ किया तबसे आपका सियाराममें प्रेम बढ़ा होगा, अध्यात्मविषयक उन्नति हुई होगी।

भगवान्‌के जिस नाम-रूपमें रुचि होती है, उसके लिये उस समय उसीके नामका जप और उसीके स्वरूपका ध्यान करना सबसे उत्तम है। आपको सियारामका नाम प्रिय है, इसलिये आपके लिये सियारामका जप ही सब प्रकारसे कल्याणप्रद है। आपका जप ठीक होता होगा।

जप करनेके समय प्रेम, प्रसन्नता और शान्ति आदि मिलती हो एवं दुर्गुणोंका नाश तथा सद्‌गुणोंकी वृद्धि होती हो तो समझना चाहिये, मेरा अभ्यास अच्छा है। ऐसा नहीं होता हो तो समझना चाहिये, कोई त्रुटि है। त्रुटि हो तो फिर उसकी खोज आपको करनी चाहिये।

आपने पहले लिखा था कि एक जगह लिखा है कि प्रतिदिन १२००० प्रणव-मन्त्रका जो नित्य अभ्यास करता है उसको एक सालमें परब्रह्म परमात्माका दर्शन हो सकता है, सो ठीक है। यह बात सबके लिये एक-सी नहीं है। जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम है, उसको इससे कममें भी भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। मलिन अन्तःकरणवाले, अश्रद्धालु पुरुषको इतना जप करनेपर भी नहीं होता।

आपने दूसरी जगह लिखा—सवा कोटि ईश्वरका नाम जपनेसे ईश्वर-साक्षात्कार बतलाया है, सो ठीक है। इसको भी उपर्युक्त रीति ही समझनी चाहिये।

असली बात तो यह है कि श्रद्धा, प्रेमसे किया हुआ भजन ही विशेष लाभदायक होता है। ऐसे जपका महात्माओंने बड़ा भारी प्रभाव बतलाया है।

[८]

आपका पत्र मिला। प्रश्नोंका उत्तर पढ़कर आपको प्रसन्नता एवं सन्तोषकी प्राप्ति हुई सो यह आपकी दयाकी बात है।

आपने मिलनेकी इच्छा लिखी सो आपके प्रेमकी बात है।

मेरे लिये श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, महान् पुरुष तथा और भी मेरी बड़ाईके शब्द लिखे सो नहीं लिखने चाहिये।

बिम्ब और प्रतिबिम्बके विषयमें आपने अपना जो अनुभव जनाया सो युक्तियुक्त है।

गुरुकृपासे आपको अनुभव हुआ लिखा सो अच्छी बात है, किन्तु यह विचारणीय विषय है। जिसको अनुभव हो जाता है वह इस प्रकारसे न तो किसीसे कहता है और न वह स्वयं यह समझता ही है कि मुझको अनुभव हो गया। वहाँ संशय, भ्रम और कर्मोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। श्रुतिमें कहा है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥*

(मुण्डक० २।२।८)

आपके पत्रसे आपका जिज्ञासुपन सिद्ध होता है, इसलिये भी आपको अपने विषयमें विचार करना चाहिये। अपने-आपको ज्ञानी मान लेना भी भूल है; क्योंकि ज्ञान होनेके बाद उसमें माननेवाला कोई नहीं रहता। अतएव आपका जिज्ञासुभाव ही युक्तियुक्त सिद्ध होता है।

प्रश्नोंका उत्तर

प्र०—अज्ञानसे उत्पन्न हुई स्वार्थ-बुद्धिका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति होनेके लिये क्या उपाय है?

---

* उस परमात्माके साक्षात् होनेपर हृदयकी चिज्जडग्रन्थिका भेदन हो जाता है और सारे संशय मिट जाते हैं एवं सम्पूर्ण पापोंका विनाश हो जाता है।

उ०-निष्कामभावसे किये जानेवाले भगवन्नामके जप और भगवत्-स्वरूपके ध्यानरूपी उपासनासे मल-विक्षेपका नाश होकर भगवान् एवं भगवान्‌के भक्तोंकी परम दयासे तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है और उस तत्त्वज्ञानसे अविद्यासहित राग-द्वेषादि सम्पूर्ण क्लेशोंका एवं सम्पूर्ण कर्मोंमें स्वार्थ-बुद्धिका अत्यन्त अभाव हो जाता है और परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति भी हो जाती है। योगदर्शनके सूत्र हैं—

'तस्य वाचकः प्रणवः।'

'तज्जपस्तदर्थभावनम्।'

'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।'

प्र०-क्या जीवात्मा और प्रकृति ये दोनों परमेश्वरके* सकाशसे बने हैं?

उ०-ऐसा कहना उचित नहीं है; क्योंकि जीवात्मा और प्रकृति दोनों अनादि माने गये हैं।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।

(गीता १३।१९)

अर्थात् प्रकृति और पुरुष दोनोंको ही अनादि जानो।

ये ईश्वरके सकाशसे भी बने नहीं, इसीलिये ईश्वर इनसे बिलकुल निरपेक्ष है। ईश्वर फल भोगनेके लिये गुण और कर्मोंके अनुसार अच्छी और बुरी योनियोंके साथ जीवात्माका सम्बन्ध जोड़ देता है। किन्तु निरपेक्ष होने एवं कर्तापनके दोषसे रहित होनेके कारण ईश्वर करता हुआ भी अकर्ता समझा गया है।

---

* उस परमेश्वरका नाम ओंकार है। उस परमेश्वरके नामका जप और उसके स्वरूपका मनन करना चाहिये। उस परमेश्वरके नाम-जप और स्वरूप-मननसे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परमात्माकी प्राप्ति भी हो जाती है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

(४।१३)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंका समूह, गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक मेरेद्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि-रचनादि कर्मका कर्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू वास्तवमें अकर्ता ही जान।

प्र०-जीवात्माके साथ अनादिकालसे अज्ञानका जो यह सम्बन्ध है इसको विज्ञानानन्दघन परमात्मा जानते हैं, ऐसा मेरा अनुभव है। अद्वैत-सिद्धान्तसे क्या यह बात ठीक है?

उ०-नहीं। अद्वैत-सिद्धान्तसे विज्ञानानन्दघन परमात्माकी दृष्टिमें तो अज्ञान है ही नहीं। जिनको अज्ञानका सम्बन्ध भासता है उन्हींकी दृष्टिमें अज्ञान है और उन्हींके लिये वह अनादि-सान्त है। अद्वैत-सिद्धान्तसे तो जीवात्माके साथ अज्ञानका सम्बन्ध वास्तवमें है ही नहीं। अध्यारोप माना गया है।

प्र०-जीवात्मा और परमात्मा जब विजातीय वस्तु हैं तो फिर एक कैसे हो जाते हैं?

उ०-जीवात्मा, परमात्मा विजातीय नहीं हैं। इसीलिये परमात्माको प्राप्त होनेके बाद यानी परमात्मामें तद्रूप होनेके बाद जीवात्मा पुनः वापस नहीं आता। जीवात्मामें जबतक अज्ञान है तभीतक वह परमात्मामें तद्रूप नहीं हो सकता। किन्तु ईश्वरकी भक्ति करनेसे अन्तःकरण पवित्र होकर ईश्वरकी दयासे जब उसे परमात्मतत्त्वका साक्षात् ज्ञान हो जाता है तब उस ज्ञानके प्रतापसे अज्ञानका नाश होकर परमात्मामें तद्रूपताको प्राप्त हो जाता है यानी परमात्मामें मिल जाता है। फिर इस जीवात्माकी परमात्मासे अलग सत्ता ही नहीं रहती।

अज्ञानके कारण अनादिकालसे जीवात्मा उस परमात्मासे पृथक्-सा हो रहा है। इसीलिये इसकी जीव-संज्ञा है। कारणरूप अविद्याके नाश होनेपर इसकी जीव-संज्ञाका भी नाश हो जाता है। इसलिये अविद्या यानी मायाको अनादि-सान्त बतलाया गया है। जैसे सिन्दूरसे निकाला हुआ पारा पारेमें मिलकर तद्रूपताको प्राप्त हो जाता है फिर वह सिन्दूर नहीं बनता, वैसे ही मायासे छूटकर पवित्र हुआ जीव, शुद्धविज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त होकर पुनः जीवभावको नहीं प्राप्त होता।

[९]

पत्र दो आपके मिले, जवाब देनेमें मेरे प्रायः ही देरी हो जाया करती है।......

प्रश्नोंका उत्तर

प्र०-काम-क्रोधके कारण साधन प्रायः बहुत कम होता है। इसलिये इनके नाशका उपाय लिखें।

उ०-विश्वासपूर्वक कटिबद्ध होकर भजन, ध्यानका साधन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। फिर काम-क्रोधका आप ही नाश हो सकता है।

प्र०-घरू संकल्प अधिक बाधक हो रहे हैं? क्या किया जाय?

उ०-अभ्यासके द्वारा उन संकल्पोंके त्याग करनेकी कोशिश करनी चाहिये।

प्र०-धर्म-प्रचार, समाज-सुधार, धनोपार्जन—इन तीन कारणों-से विद्याका अभ्यास करनेकी रुचि प्रबल हो रही है।

उ०-यह उचित ही है। तीनों हेतुओंसे विद्या सीखनेकी वृत्ति नीतिकी दृष्टिसे अनुचित नहीं है।

प्र०-प्रभुसे क्या माँगना चाहिये?

उ०-प्रभुका प्रेमसहित अनन्यचिन्तन माँगना चाहिये।

प्र०-साधनके विषयमें बराबर पूछताछ करनी चाहिये।

उ०-समय कम मिलनेके कारण एवं स्वभावकी ढिलाईसे पत्र देनेमें विलम्ब हो जाता है, नहीं तो पूछनेमें कोई संकोच नहीं है।

प्र०-साधनके लिये कड़ाई करनी चाहिये।

उ०-स्वभावकी नरमी एवं अनधिकार समझकर आपपर कड़ाई नहीं की जा सकती अतएव आपको ही अपने ऊपर कड़ाई करनी चाहिये।

प्र०-जीवकी इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह प्रमाद छोड़कर बिना किसी प्रकारकी उत्तेजना पाये ही अपने लक्ष्य-पथपर अग्रसर होता जाय।

उ०-इसके लिये सन्त-कबीरकी साखीमें वर्णित कबीरदासजीकी चेतावनीकी तरफ खयाल करनेसे बहुत मदद मिल सकती है।

प्र०-अध्यात्म-जगत्‌में इसीलिये एक मार्ग-प्रदर्शकके संकेत और तत्त्वावधानकी आवश्यकता और उपयोगिता भी एक विशेष स्थान रखती है।

उ०-मार्गदर्शक बहुत पुरुष हो चुके हैं और हैं भी। जिनमें जिनकी श्रद्धा है उनके लिये वही मार्ग-प्रदर्शक बन सकता है। मार्गदर्शकोंकी कमी नहीं है, किन्तु श्रद्धा और प्रेमकी आवश्यकता है।

प्र०-भगवान्‌की विस्मृति और भोगोंकी अनवरत उपासनाने इस अभिमानी ब्राह्मणको बहुत दूर ला गिराया है।

उ०-कोई चिन्ता नहीं, इसके लिये विचारपूर्वक परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान और उनके नामका जप करनेके लिये कोशिश करनी चाहिये। अथवा हठसे ही कोशिश करनी चाहिये, ऐसा करनेसे सब कुछ हो सकता है।

प्र०-शिश्नोदरपरायण प्रमादीका उद्धार अपने बलपर होना परम कठिन है।

उ०-इसके लिये ईश्वरकी शरण लेनी चाहिये। ईश्वरके नामका जप, स्वरूपका ध्यान और उनकी आज्ञाका पालन करना तथा उनके विधानपर खुश रहना ईश्वरकी शरण है।

प्र०-विषयोंके संग और सेवनसे अन्तःकरण मलिन होता जा रहा है।

उ०-यदि यह बात आपकी समझमें आ गयी हो तो विचार-पूर्वक विषयसंग और सेवनका त्याग करना चाहिये। विचारसे त्याग न हो तो हठसे भी त्याग करना उत्तम है।

प्र०-सत्संगकी अभिरुचि पूर्वापेक्षा न्यून प्रतीत हो रही है।

उ०-इसके लिये श्रद्धालु पुरुषोंका संग एवं महापुरुषोंके प्रेम, रहस्य, गुण और प्रभावकी बातोंका श्रवण और विवेचन करना उत्तम है।

प्र०-देहाध्यास अधिक बढ़ा हुआ है।

उ०-इसके लिये दो ही उत्तम उपाय हैं—

(१) अभिमानको छोड़कर निष्काम प्रेमभावसे ईश्वरकी अनन्यशरण होना।

(२) गीता अ० १४।१९ के अनुसार द्रष्टा (साक्षी) होकर इस शरीर और शरीरके कर्मको आत्मासे पृथक् देखनेका अभ्यास करना।

प्र०-मान-बड़ाईके प्रदीप्त दीपकमें मन पतंग होकर उत्साहसे

जलना चाहता है, ऐसी परिस्थितिमें आपको और सुहृद् भगवान्‌को छोड़कर किसके सामने पुकार करूँ?

उ०-मान-बड़ाईको प्रदीप्त दीपक समझनेमें ही अभी कमी है, अतएव इसको प्रदीप्त दीपकके सदृश अच्छी तरह समझनेकी कोशिश करनी चाहिये, फिर मन जलकर मरना नहीं चाहेगा। इसको समझनेके लिये एकान्तमें करुणभावसे रोकर ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये।

प्र०-महापुरुषोंमें आरम्भमें जो श्रद्धा दीखती थी वह इस समय उस रूपमें नहीं दीखती, इसका कारण भी शायद साधनकी कमी और विषय-सेवनकी अधिकता ही होगी।

उ०-सबसे बढ़कर महापुरुष तो परमेश्वर ही हैं। उनमें निष्कामभावसे प्राप्त हुई सच्ची श्रद्धाका क्षय नहीं होना चाहिये। यदि कमी नजर आती हो तो उसके मूलमें कोई कामनाका होना सम्भव है। भगवान्‌के भक्तोंमें श्रद्धाकी कमी होनेमें कारण भगवान्‌के भक्तोंमें गुणोंकी तारतम्यताका देखना एवं विषयासक्त और नास्तिक पुरुषोंका संग तथा पूर्वकृत पापकी वासनाएँ, साधनकी कमी और विषय-भोगोंका सेवन इत्यादि अनेक हेतु हो सकते हैं।

प्र०-दूसरोंके दोष पहाड़ बनकर मेरी वाणीके आलोच्य विषय हो रहे हैं, उनकी निन्दामें रस मालूम देता है।

उ०-दूसरोंके दोष और अपने गुणोंकी आलोचनासे जो आनन्द होता है उसको मृत्युके समान समझकर उसका विषके तुल्य त्याग करना चाहिये, नहीं तो भारी पतन होना सम्भव है।

[१०]

आपका पत्र मिला, श्रीनारायणकी प्राप्तिमें पुरुषार्थ ही प्रधान है; परन्तु लोगोंको इस बातका विश्वास न होनेके कारण वे धनके लिये तो पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु भगवान्‌के लिये नहीं करते। मनुष्य जितनी चेष्टा धनके लिये करता है उतनी यदि भगवान्‌के लिये करे तो अवश्य भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। धन तो प्रारब्ध होनेपर ही मिल सकता है; पुरुषार्थसे मिलता तो अबतक सभी धनवान् हो गये होते, क्योंकि धनवान् बननेके लिये तो प्रायः सभी लोग जी-तोड़ चेष्टा करते हैं।

संसारमें बहुतेरे मूर्खोंके पास भी धन देखा जाता है और बुद्धिमान् धनके अभावमें दुःख उठाते देखे जाते हैं। किसीको बहुत चेष्टा करनेपर भी धन नहीं मिलता और किसीको बिना ही चेष्टाके धनकी प्राप्ति हो जाती है। इससे यह मालूम होता है कि धनकी प्राप्ति प्रारब्धके अधीन है।

परन्तु भगवान्‌की प्राप्ति तो पुरुषार्थके ही अधीन है। इतनेपर भी लोग भगवान्‌के लिये पुरुषार्थ न करके धनके लिये करते हैं। इससे बढ़कर क्या मूर्खता हो सकती है? इस बातपर विचार करके श्रीभगवान्‌की प्राप्तिके लिये भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगरूपी पुरुषार्थमें निष्कामभावसे अधिक-से-अधिक समय लगाना चाहिये। यदि दूकानका काम भी निष्कामभावसे, प्रभुका ही समझकर किया जाय तो वह भी भगवत्प्राप्तिके लिये किया जानेवाला पुरुषार्थ ही समझा जायगा। हाँ, लोभसे किया जाय तो दूसरी बात है।

[११]

आपने लिखा कि भजन-ध्यानकी इच्छा है परन्तु जैसा होना चाहिये वैसा नहीं होता, सो ठीक है। भजन-ध्यानको सबसे उत्तम महत्त्वकी वस्तु समझनेसे ही भजन-ध्यान सदा-सर्वदा हो सकता है। यदि यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाय कि भजन-ध्यानसे सब कुछ हो सकता है तो फिर भजन-ध्यानके लिये भी वैसी ही विशेष चेष्टा हो सकती है जैसी रुपयोंके लिये होती है। क्योंकि लोगोंने यह भलीभाँति समझ रखा है कि रुपयोंसे संसारकी सभी चीजें मिल सकती हैं। भगवान् रुपयेसे नहीं मिलते, इस बातको भी लोग जानते हैं; परन्तु भगवान् भले ही न मिलें, भगवान्‌से क्या मतलब है? रुपये मिलने चाहिये, फिर संसारके सब आराम आप ही मिल जायँगे। इस प्रकार मूर्खता हृदयमें धँसी हुई है, तब दूसरी बातका असर कैसे पड़ सकता है?

इसमें अज्ञान, आसक्ति और पूर्वके पाप ही कारण हैं, इनका नाश भजन-ध्यान और सत्संगसे हो सकता है। अतएव यही लिखना है कि यदि आपको विश्वास हो तो भजन-ध्यान और सत्संगमें श्रद्धा करके चेष्टा करनी चाहिये। फिर समयपर स्वयं ही लाभ होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

[१२]

जिस प्रकार नौकरको काम करनेमें हर समय मालिकका डर लगा रहता है, जिससे वह जानकर कोई भूल नहीं करता, इसी प्रकार प्रभुका भय रखना चाहिये। और जिस प्रकार नौकर सब काम करता हुआ भी लाभ-नुकसान सब मालिकका समझता है, वेतनके सिवा अपना कुछ भी नहीं समझता, इसी प्रकार सब कुछ भगवान्का समझना चाहिये और जो कुछ मोटा खाना, मोटा पहनना मिले उसीको भगवान्का प्रसादरूप वेतन समझना चाहिये।

अपना यह शरीर भी प्रभुके प्रसादसे ही बना है, अतएव यह भी मालिकका ही है। इस प्रकार समझनेवाला नौकर मालिकको बहुत ही प्रिय होता है। ऐसा विचार कर उस प्रभुका सच्चा सेवक बनना चाहिये, सेठ, बाबू या मालिक नहीं बनना। जो सेठ, बाबू या मालिक बनते हैं उन्हींपर सारा भार आता है। वास्तवमें नौकर यदि मालिक बन बैठता है तो मालिक उसे निकालनेकी ही कोशिश करता है, क्योंकि वह समझता है कि मैंने इसको नौकर रखा था, यह मालिक बन बैठा। अन्तमें वह निकाल दिया जाता है और उसकी दुर्दशा होती है। इसी प्रकार जो भगवान्के धनका मालिक बन बैठा है उसकी भी दुर्दशा होनेवाली है, पहले भी बहुत बार हो चुकी है!

[१३]

आपका पत्र मिला, भगवान्‌की प्राप्तिके लिये श्रीगीताजीका अर्थसहित अभ्यास करना चाहिये। निष्कामभावसे सब भाइयोंकी सेवा करनेसे भी अन्तःकरणकी शुद्धि होकर बहुत ही शीघ्र श्रीभगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। मनसे सबका हित चाहना भी सेवा है और सबको श्रीभगवान्‌की भक्तिमें लगानेकी चेष्टा करना तो परम सेवा है। इन बातोंसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं, अतएव निष्कामभावसे इस विषयकी दलाली करनी चाहिये, अर्थात् लोगोंको भगवान्‌के भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये। आपको विचार करना चाहिये। समय बहुत थोड़ा रह गया है। अब भी नहीं चेतेंगे तो फिर कब चेतेंगे? फिर कौन-सी वस्तु आपके काम आवेगी? जब शरीर ही आपका नहीं है तब स्त्री, पुत्र, घर और धनकी तो बात ही क्या है? वहाँ तो केवल भगवान्‌का प्रेम ही काम आता है और कोई भी चीज काम नहीं आती। संसारके लोग सब अपने मतलबमें लगे हैं। यों समझकर उस परमप्रेमी, दीनदयालु भगवान्‌के शरण होकर केवल उसीसे प्रेम करना चाहिये। अपने प्राणोंसे भी अधिक उससे प्रेम करना चाहिये। प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु उसके प्रेममें कभी कलंक न लगने पावे। आपको बारम्बार विचार करना चाहिये, आप किसलिये आये थे, यहाँ क्या करना चाहिये और आप क्या कर रहे हैं।

[१४]

आपका पत्र मिला, वेदान्तके सिद्धान्तसे ब्रह्म सच्चिदानन्दघन अनादि और अनन्त है। निर्मल आकाशके किसी एक अंशमें बादलकी भाँति उसी ब्रह्मके एक अंशमें प्रकृति यानी माया है, वह माया जड एवं विकारी है इसीलिये अनित्य है।

ब्रह्मके जिस अंशमें माया है उसको मायाविशिष्ट ईश्वर कहते हैं। उसीका संकेत सर्वज्ञ, सर्वेश, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी आदि नामोंसे किया गया है। उस ईश्वरका जो अंश है उसकी जीव-संज्ञा है। ये जीव नाना और अनन्त हैं।

उस परमेश्वरका अंश होनेपर भी मायाके साथ सम्बन्ध रहनेके कारण जीव-संज्ञा मानी जाती है। यह मायाका सम्बन्ध अनादि और सान्त है। उस मायाके अविद्या यानी अज्ञान-अंशसे जीव मोहित हो रहे हैं। उस अविद्याके अंशको ही कारण-शरीर कहते हैं। उसका बाध विद्या यानी ज्ञानसे होता है। अज्ञानके विध्वंस होनेपर बुद्धिजनित वह ज्ञान भी स्वतः ही शान्त हो जाता है। जैसे ईंधनको जलाकर अग्नि स्वतः शान्त हो जाती है वैसे ही ज्ञान भी अज्ञानका नाश करके स्वतः शान्त हो जाता है। फिर यह जीव मायासे रहित हुआ कैवल्य-अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। अर्थात् सच्चिदानन्द परमात्मामें तद्रूपताको प्राप्त हो जाता है। वह ज्ञान निष्काम कर्म और ईश्वरकी भक्तिसे होता है।

वह सर्वव्यापी ईश्वर इस चराचर संसारका ज्ञाता, नियन्ता और मालिक है। इस संसारकी रचना उस चेतन ईश्वर और जड प्रकृतिके संयोगसे हुई है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥

(गीता ९।१०)

अर्थात् हे अर्जुन! मुझ अधिष्ठाताके सकाशसे (यह मेरी) माया चराचरसहित सर्व जगत्को रचती है और इस (उपर्युक्त) हेतुसे ही यह संसार आवागमनरूप चक्रमें घूमता है। जडवर्ग यानी जीवोंके शरीर तो प्रकृतिका विकार है। उस शरीरमें जो चेतनता है वह ईश्वरका अंश है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(गीता १५। ७)

अर्थात् इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

वह परमेश्वर जिसमें व्यापक, जिसका ज्ञाता, स्वामी और अन्तर्यामी है उसका नाम चराचर संसार है। चर उन प्राणियोंके नाम हैं जो चल-फिर सकते हैं। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि। अचर उन प्राणियोंके नाम हैं जो स्थिर रहते हैं—वनस्पत्यादि।

[१५]

तुमको मेरी अपेक्षा भी श्रीभगवान्‌में बहुत अधिक प्रेम करनेकी आवश्यकता है। उसके लिये तो प्राणपर्यन्त चेष्टा होनी चाहिये। मुझसे अधिक प्रेम न भी हो तो कोई हर्ज नहीं है। परन्तु जिनका श्रीनारायणदेवमें प्रेम नहीं है, उनके लिये महान् हानिकी बात है। अतएव श्रीभगवान्‌में पूर्ण प्रेम होनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करना तुम्हारा काम है। ऐसी चेष्टा करनेपर भी प्रेम न हो, सो नहीं। पहले तुम्हारा सत्संगमें कैसा प्रेम था, उस समय तुम सत्संगके सामने रुपयेको कुछ भी नहीं समझते थे, न शरीरकी तकलीफकी ही परवा करते थे। अब तो उससे भी बहुत ज्यादा प्रेम सत्संगमें होना चाहिये और सत्संगसे भी बहुत ज्यादा प्रेम भगवान्‌में होना चाहिये। सत्संगमें जो प्रेम है सो भगवान्‌के लिये ही है, इससे उसको भी भगवान्‌में ही समझना चाहिये।

प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु भगवान्‌के मिलनेका उपाय करनेमें देर नहीं होनी चाहिये। भगवान्‌के विछोहमें बीतनेवाला एक पल भी युगके समान लगना चाहिये। ध्रुव, प्रह्लाद और गोपियोंकी जैसी चेष्टा थी, वैसी ही हो, तब श्रीभगवान्‌के मिलनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा समझी जा सकती है।

[१६]

आपका पत्र मिला, भगवान्‌में अनन्यप्रेम होनेके लिये अभ्यास ही प्रधान है। इसलिये ध्यानका अभ्यास खूब मन लगाकर करना चाहिये। ध्यानके समान इस संसारमें कुछ भी नहीं है। ध्यान श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश नामक पुस्तकमें देखना चाहिये। ध्यान तेज होनेके लिये सत्संग, भजन और अर्थसहित श्रीगीताजीका अभ्यास करना चाहिये। निष्कामभावसे लोकसेवा करनेसे भी पापोंका नाश होकर भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

निराकारके ध्यानकी बात भी समझनी चाहिये। जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ सच्चिदानन्दघन परमात्माको परिपूर्णरूपसे व्याप्त देखना चाहिये। ऐसा समझना चाहिये कि एक नित्य-शुद्ध-बोध-स्वरूप परमात्मा सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण हैं। उस परमात्माके सिवा अन्य जो कुछ भी भासता है, वह समस्त उस सच्चिदानन्दघन परमात्माका ही संकल्प है। वास्तवमें उस नित्य, चेतन, सबके अधिष्ठानरूप परमात्माके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। इस प्रकार सदा-सर्वदा एक परमात्मा वासुदेव भगवान्‌को ही, सर्वत्र समानभावसे व्याप्त देखते रहना चाहिये। ऐसा करते-करते जब अभ्यास दृढ़ हो जाता है, तब उस साधक पुरुषकी निरन्तर सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही एकीभावसे स्थिर स्थिति हो जाती है।

[१७]

तुमने लिखा कि दूकानका काम अधिक देखना पड़ता है जिससे भजनमें और भी अधिक भूल हो जाती है सो ठीक है। भजन-ध्यानकी स्थितिमें सावधान रहते हुए जितना काम हो सके, करना चाहिये। कामसे डरना नहीं चाहिये। न कामको छोड़ना ही चाहिये। भजन-ध्यानमें प्रेम होनेपर उस मनुष्यको काम स्वयं ही छोड़ देता है। संसारके कामसे प्रेम छोड़कर भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये। फिर संसारका काम चाहे जितना हो, कुछ हर्ज नहीं! फलासक्तिको छोड़कर निष्कामभावसे भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान करते हुए ही प्रसन्न मनसे भगवान्‌के लिये काम करना चाहिये। जो कुछ संसार प्रतीत होता है वह भी भगवान्‌की लीला है। भगवान् ही लीला कर रहे हैं। उनकी रुचिके अनुसार ही लीलावत् ही काम करना चाहिये। मालिककी इच्छासे ही सब काम होते हैं। अतः मालिक जैसा करें, उसीमें प्रसन्न रहना चाहिये। उसके विपरीत इच्छा ही नहीं करनी चाहिये और काम करते समय भी मनमें अप्रसन्न होना ठीक नहीं। इससे मालिक अकर्मण्य समझता है, शरणागतिमें दोष आता है और वह निष्काम कर्म भी नहीं समझा जाता। अपने मनके अनुसार इच्छा करना ही शरणागतिमें दोष लगाना है। इसलिये अपनी इच्छाको सर्वथा छोड़कर जिससे स्वामी प्रसन्न हों वही काम स्वामीके लिये लीलामात्र मानकर करना चाहिये। जो मनुष्य कामको लीलामात्र समझ लेगा वह कामसे कभी घबरायेगा नहीं! जो मनुष्य स्वामीके कामको झंझट समझकर उससे जी चुराता है वह अकर्मण्य समझा जाता है। जो लीलामात्र कामको सच्चा समझता है, स्वामी उसे मूर्ख मानता है और जो कामको वास्तवमें ही स्वप्नवत् (लीलामात्र) समझता है, मालिक

उसीको अपना ज्ञानी भक्त समझता है। और तुमने लिखा कि मैंने अभी समयको अमूल्य नहीं समझा; सो ठीक है। समयको अमूल्य जान लेनेपर निरन्तर भजन, ध्यान होते रहनेमें संसारके काम कुछ भी अड़चन नहीं डाल सकते।

जिन मनुष्योंकी शरीरमें आसक्ति है, यदि उनके जेल या फाँसीके योग्य कोई मुकद्दमा लग जाय तो संसारके सब काम करते हुए भी वे उसके चिन्तनको नहीं भूल सकते। जिस किसी उपायसे उस मुकद्दमेसे छुटकारा हो उसीको वे सर्वोत्तम मानते हैं। इसीलिये उसको भूलते नहीं। इसी प्रकार जो यमराजके द्वारा दी जानेवाली फाँसी (मृत्यु)-के मुकद्दमेको समझ लेता है, वह भी जबतक उससे छुटकारा नहीं पा लेता, तबतक छुटकारेके लिये प्रयत्न करता रहता है। जिसे यह विश्वास है कि मुझपर चौरासी लाख बार शूली चढ़ानेका मुकद्दमा चल रहा है, अर्थात् चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लेकर मरना पड़ेगा, जबतक इस मुकद्दमेसे छुटकारा न हो जाय, तबतक क्षणभरके लिये भी उसे चैन नहीं पड़ता।

जैसे धनका लोभी चलते-फिरते सब काम करते हुए भी निरन्तर इसी चिन्तामें रहता है कि कैसे धन मिले। जैसे दुष्ट स्वभावके कारण नीच परपुरुषमें आसक्त दुराचारिणी स्त्रीका चित्त सावधानीके साथ घरका काम-काज करते हुए भी निरन्तर परपुरुषके चिन्तनमें लगा रहता है और वह अपना भेद भी किसी प्रकार प्रकट नहीं होने देती है। इसी प्रकार निरन्तर गुप्तरूपसे तथा लगनके साथ श्रीनारायणका प्रेमपूर्वक स्मरण करना चाहिये। जो नारायणको छोड़कर संसारसे प्रीति करता है, वह तो अपने ही हाथों अपना गला काटता है।

[१८]

तुमने लिखा कि 'निरन्तर भगवान्का चिन्तनसहित जप हो सके ऐसी कोई व्यवस्था होनी चाहिये' सो ठीक है। यदि तुम्हारे मनमें ऐसी चाह होती है तो बड़ी उत्तम बात है। फिर देर क्यों हो रही है? जिसको किसी वस्तुकी इतनी प्रबल चाह होगी, वह तो उसीके परायण हो जायगा! फिर ऐसा होनेमें देर क्या है? परन्तु अभी पूरी चाह नहीं हुई है। इस चाहके साथ जो सांसारिक वस्तुओंकी चाह भी लगी हुई है वही इसमें बाधक है। जो भगवान्को सर्वोत्तम समझ लेगा, वह सभी समय एकमात्र भगवान्की ही चाह करेगा। अन्य वस्तुकी चाहको मनमें स्थान ही न देगा। सर्वोत्तम वस्तुके बदले कोई बुरी चीज कैसे ले सकता है?

भगवान्का भजन-ध्यान अमूल्य हीरे-माणिक्य हैं और सांसारिक भोग-पदार्थ काँच-पत्थर! इस बातको जो समझ लेगा वह भजन-ध्यानरूप हीरे-माणिक्यको छोड़कर काँच-पत्थररूप विषय-भोगका व्यवहार कैसे करेगा? जो ऐसा करेगा, वह तो महा मूर्ख ही समझा जायगा!

भजन अधिक होनेका उपाय पूछा—सो भगवान्के नाम-जपको सर्वोत्तम समझ लेनेपर भजन अधिक हो सकता है। भगवान्के नामकी महिमा तथा प्रभाव जाननेपर भी भजन अधिक हो सकता है और वह जाना जाता है सत्संगसे। अतः सब लोग एकत्र होकर भगवान्की चर्चा करें तो बड़ा उत्तम है। सत्संग ही सार है।

[१९]

आपने लिखा—'मुझसे नाम-जपमें बहुत भूलें होती हैं, यह मेरे पुरुषार्थकी ही त्रुटि है।' सो पुरुषार्थकी त्रुटि नहीं रखनी चाहिये। भजनका रहस्य और प्रभाव जान लेनेपर तो त्रुटि रहती ही नहीं। परन्तु अभी तो विश्वास करके ही नाम-जपका तीव्र अभ्यास करना चाहिये।

आपने लिखा कि—'समय बीत रहा है!' सो समय तो बीतेगा ही, जिसका समय भगवान्के भजन-ध्यानके बिना बीत रहा है वही शोचनीय है। जो समय भजन-ध्यानमें बीता, वह तो बीता नहीं, वह तो बना रह गया। जो समय बिना भजनके जाता है उसीके लिये पछताना पड़ता है। इसलिये सर्वकालमें निरन्तर भगवान्का स्मरण बना रहे इसके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक चेष्टा होगी तो अवश्य कम भूलें होंगी।

इस प्रकार प्रबल चेष्टा करनेपर भगवान्में प्रेम होगा ही। बहुत दिनोंतक प्रसन्नमनसे भजनका तीव्र अभ्यास करनेपर ही भगवन्नाम-जपमें प्रेम हो सकता है।

भजन प्रेमपूर्वक न भी हो तो भी निरन्तर हो, ऐसी चेष्टा दृढ़ताके साथ करनी चाहिये। समय अमूल्य है, उसे अमूल्य काममें ही बिताना चाहिये। फिर कोई हानि नहीं! बहुत सावधान रहना चाहिये। मृत्यु पहलेसे किसीको सूचना नहीं देती। ऐसा जानकर सब समय एकमात्र नारायणके भजनका आश्रय लेना चाहिये। सच्चिदानन्द भगवान्का चिन्तन होते हुए जिसकी मृत्यु होगी, उसके लिये कोई हानि नहीं है। फिर एक पलके लिये भी आप कालका विश्वास करके भजन क्यों छोड़ते हैं?

[२०]

आपने लिखा कि 'दूकानका काम देखनेमें तथा लोगोंसे बातचीत करनेमें भगवत्-विस्मृति हुए बिना नहीं रहती।' सो ठीक है। निरन्तर अटल स्थिर स्थिति न हो जाय तबतक ऐसा हो सकता है। इसके लिये उपाय पूछा, सो भजन-ध्यान करते हुए काम करनेका अभ्यास ही उपाय है और सत्संग तथा ग्रन्थोंके द्वारा भगवद्विषयका विचार करते रहना चाहिये।

भगवान्की स्मृति तथा सत्संग और सद्ग्रन्थोंके द्वारा भगवान्के भजन, ध्यान, वैराग्य तथा ज्ञानकी और भगवान्के प्रेम, प्रभावकी बातें, उनके गुणानुवाद तथा सुहृद्-स्वभावकी कथाएँ सुनने एवं पढ़नेसे भगवान्में प्रेमसहित श्रद्धा हो सकती है। तब भगवान्का यथार्थ प्रभाव जाना जा सकता है और तभी निरन्तर सर्वकालमें ध्यानसहित नामका जप हो सकता है।

[२१]

तुमने लिखा कि 'मेरा आना नहीं हुआ, इसमें मेरे प्रेमका ही अभाव समझना चाहिये।' सो ऐसा मानना उचित नहीं;····· का तो मुझसे बहुत ही कम मिलना होता है, तो क्या उनका प्रेम कम समझना चाहिये। पूर्वकालमें भी जिनका-जिनका परस्पर मिलना कम होता था तो इससे उनका प्रेम कम थोड़े ही समझा जाता था। अपने तो साधारण मनुष्य हैं, साक्षात् श्रीभगवान्के साथ अर्जुनका बहुत ही अधिक प्रेम था। लोगोंके देखनेमें भगवान्से अर्जुनका मिलना बहुत ही कम होता था, परन्तु क्या इससे उनका प्रेम कम समझा जा सकता है? न मिलनेमें केवल प्रेमका अभाव हो सो बात नहीं है और भी कई कारण हो सकते हैं।

तुमने लिखा—'ऐसा क्या प्रतिबन्ध है जिससे तुम्हारे पास रहना नहीं होता।' सो प्रतिबन्ध हो तो क्या हर्ज है। मेरे पास रहनेकी तुम्हारी इतनी जिद्द क्यों है? मेरे पास रहनेसे ही लाभ होता तो मेरे पास रहनेवाले सभीको ही लाभ होना चाहिये था।

पहले तुम कहा करते थे कि 'लगातार छः मास यदि तुम्हारे पास रहना हो जाय तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय।' परन्तु तुम तो इससे भी अधिक मेरे पास रह चुके! अतः भाई! भगवत्प्राप्ति तो भगवान्‌के भजन, ध्यानके तीव्र अभ्यास करनेसे ही हो सकती है। और वह नारायणके आश्रयपर पुरुषार्थ करनेसे सभी जगह हो सकती है।

हर समय भगवान्‌के समीप रहनेकी उत्कण्ठा रखनी चाहिये। भगवान्‌के पास नित्य रहनेमें उत्कण्ठा ही प्रधान हेतु है। उत्कण्ठा तीव्र होनेपर कोई भी प्रतिबन्धक नहीं रह सकता।

'निरन्तर मेरे पास रहनेके लिये क्या पुरुषार्थ करना चाहिये' इसका उपाय पूछा, सो मैं यह नहीं लिख सकता।

भगवान्‌की कृपासे ही सब बातोंका सुयोग लगा करता है। सुयोग प्राप्त हो जानेपर भी जो नहीं चेतते वे तो निरे पशु ही समझे जाते हैं। मनुष्य होकर कुछ तो विचार करना चाहिये कि मेरा क्या कर्तव्य है और मैं क्या कर रहा हूँ!

[२२]

आपने लिखा कि—'एक पल या एक श्वास भी भगवान्के स्मरण किये बिना न जाने पावे, इसके लिये क्या चेष्टा करनी चाहिये?' सो इसके लिये भगवान्के गुणानुवाद, प्रभाव, स्वरूप, भक्ति और वैराग्यकी बातें सुननी और पढ़नी चाहिये। इसके सिवा दूसरा कोई सरल उपाय नहीं है। ऊपर लिखे अनुसार करनेसे भगवान्में प्रेम होनेपर निरन्तर ध्यानसहित निष्काम स्मरण रह सकता है।

जो समयकी कीमत जान लेता है, उसका एक पल या एक भी श्वास व्यर्थ कैसे जा सकता है? जो समय बिना भगवच्चिन्तनके जाता है वह तो धूलमें ही जाता है (व्यर्थ ही नष्ट होता है)। इस प्रकार समझनेवालेके द्वारा एक पल या एक श्वास भी धूलमें कैसे मिलाया जा सकता है?

भगवान्की कृपा, दया हम सभीपर सदा ही पूर्ण बनी हुई है। इस बातको जो जान लेगा, वह भगवान्को कभी न भूल सकेगा।

---

[२३]

आपका पत्र मिला। जो समयके महत्त्वको जानता है, वह कभी कालके द्वारा नहीं मारा जाता; क्योंकि वह कभी कालका विश्वास ही नहीं करेगा। उसको काल धोखा कैसे दे सकता है? जो कालको अच्छी तरह नहीं जानता, वही कालके धोखेमें आता है। उसीको काल नाश कर देता है। काल अचानक आता है। जैसे चूहेको बिल्ली पकड़ती है, मौत भी उसी प्रकार अचानक आ पकड़ती है, ऐसा जानना चाहिये।

अतः जो सब समय भगवान् नारायणके चिन्तनकी शरण

रखेगा, एक पल भी उसे नहीं छोड़ेगा और भगवान्‌के नाम-रूपका चिन्तन करते हुए ही मरेगा वह तो भगवान्‌को ही प्राप्त होगा। वह मृत्युरूपी संसारसागरमें कभी न डूबेगा। उसको मृत्यु कभी नहीं मार सकेगी। वही पुरुष धन्यवादका पात्र है जिसका अनन्य प्रेम होनेके कारण हर समय एकमात्र भगवान्‌में ही ध्यान रहता है यानी जिसको निरन्तर भगवान्‌का ही स्मरण रहता है, उसको फिर जीवन्मुक्तिसे भी क्या प्रयोजन है? वह तो दर्शन करनेयोग्य है। उसके दर्शनसे तो पापी भी पापमुक्त हो जाता है। उसके जरिये कितने ही पुरुष जीवन्मुक्त हो जाते हैं, फिर उसके अपने जीवन्मुक्त होनेकी तो आवश्यकता ही नहीं रहती। उसे तो सर्वकालमें निरन्तर एकमात्र भगवान्‌का प्रेमपूर्वक चिन्तन होता रहे, इसके अतिरिक्त और कुछ भी चाह नहीं होनी चाहिये।

[२४]

आपने लिखा कि 'समय बहुत व्यर्थ जाता है, भजन बहुत ही कम होता है' सो व्यर्थ समय किसलिये जाता है? विषयी पुरुषोंका संग और विषयोंका चिन्तन अधिक होता होगा। भगवान्‌में प्रेम कम होनेके कारण ही भजन कम होता है। भगवान्‌में प्रेम होनेके लिये भगवान्‌के गुणानुवादकी बातें सत्संग तथा शास्त्रोंद्वारा सुननी तथा पढ़नी चाहिये। इस प्रकार अभ्यास करनेसे भगवान्‌का प्रभाव जाना जा सकता है; जिससे संसारसे वैराग्य होकर भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। तब ऐसा होनेपर अपने-आप ही भजन अधिक होगा।

दिन बीत रहे हैं, गया हुआ समय फिर नहीं आता। शरीर एक दिन अवश्य मिट्टीमें मिल जायगा, इसका कोई उपाय नहीं है। जब शरीर ही अपना नहीं है, फिर औरकी तो बात ही क्या

है? जो कुछ भी पदार्थ हैं, सबका नाश होनेवाला है। श्रीनारायणदेव ही सच्चे आनन्दरूप हैं, उन्हींकी शरण लेनी चाहिये। श्रीभगवान्‌के दर्शन हुए बिना संसारके जालसे कभी छुटकारा नहीं होगा। श्रीनारायणका मिलन प्रेमके अधीन है। इसलिये जैसे भी हो शीघ्र श्रीनारायणमें पूर्ण प्रेम हो, बहुत जल्दी वैसी चेष्टा करनी चाहिये। तुम्हारे पास जो कुछ भी है वह सब कुछ नारायणदेवकी प्राप्तिके लिये लगा देना चाहिये, फिर तो नारायण हाजिर ही हैं।

[२५]

आपका पत्र मिला। आपसे अपने पिताजीकी आज्ञाका पालन और उनकी सेवा भलीभाँति बनती है या नहीं? नारायणके नामका जप और उनके स्वरूपका ध्यान हर समय काम करते हुए भी बना रहे ऐसा उपाय करना चाहिये। करीब दो या तीन घंटेका समय भजन-ध्यानके लिये अलग नियत रखना चाहिये। इस कामके लिये अवकाश अवश्य निकालना चाहिये। सत्संगकी चेष्टा करनी चाहिये। शास्त्र तथा भगवद्भक्ति-सम्बन्धी ग्रन्थोंको पढ़ना भी सत्संग ही समझा जाता है। भजन-ध्यानमें आनन्द आनेपर तो बिना ही चेष्टाके हो सकता है, अभी तो एक बार बुद्धिके निश्चयसे और जबर्दस्तीसे ही भजन करना चाहिये। भजन करते-करते ही आनन्द आता है और तभी भजनका मर्म जाना जा सकता है!

[२६]

आपने लिखा—'निरन्तर भजन-ध्यान हो, ऐसी कड़ी बात लिखनी चाहिये।' सो ठीक है। परन्तु बातोंसे भजन-ध्यान होता तो कभीका हो जाता। संसारसे वैराग्य होनेपर निरन्तर भजन-ध्यान हो सकता है। परमात्मामें प्रेम होनेपर संसारसे आप ही वैराग्य हो जाता है। भगवान्‌के गुणानुवाद, उनके स्वभाव, सामर्थ्य और प्रेमकी बातें पढ़ने-सुननेसे भगवान्‌का मर्म जानकर भगवान्‌में प्रेम होता है, तब संसारके भोग अच्छे नहीं लगते। एकमात्र भगवान्‌के मिलनेकी ही बारम्बार उत्तेजना होती है। तभी निरन्तर भजन-ध्यान होता है।

समय बीता जा रहा है, गया हुआ समय किसी प्रकार भी लौटकर नहीं आता। ऐसा जानकर समयको अमूल्य काममें ही बिताना चाहिये। ऊँचे-से-ऊँचे काममें ही समय लगाना चाहिये। आप जिस कामके लिये संसारमें आये थे, उस कामको पहले पूरा करके ही फिर दूसरे कामको देखना चाहिये। एक भगवान्‌के बिना आपका सच्चा सुहृद् और कोई नहीं है, ऐसा जानकर निरन्तर भजन-ध्यान करना चाहिये।

[२७]

तुमने लिखा कि 'परमात्मामें मन लगे ऐसा उपाय होना चाहिये' सो मेरा भी यही लिखना है कि इसीके लिये जल्दी होनी चाहिये। परन्तु आप उपाय न करें तब क्या उपाय हो? जिसे परमात्मामें मन लगानेकी चिन्ता होगी, वह उसके लिये बड़ी तत्परताके साथ उपाय करेगा और उसीका उपाय भी सफल होगा।

[२८]

भजन, ध्यान, सत्संगके लिये सचेष्ट रहनेसे, थोड़ा-बहुत भजन-ध्यान हो सकता है। अधिक भजन तो बहुत दिनोंतक विशेष तत्परताके साथ हर समय अभ्यास करनेपर ही होता है। अतः मनुष्यको विचार करना चाहिये, कि मैं किसलिये आया हूँ, मैं कौन हूँ? मेरा क्या कर्तव्य है और मैं कर क्या रहा हूँ? मैं जो कुछ करता हूँ वह सब ठीक है या नहीं? जिससे हमारा परम कल्याण हो, हमें वही करना चाहिये। मैं जो कुछ करता हूँ वह यदि ठीक नहीं है, तो फिर वही करना चाहिये जो ठीक हो। मूल्यवान्-से-मूल्यवान् काममें ही समय लगाना चाहिये। भजन, ध्यान और सत्संगके समान संसारमें कोई भी मूल्यवान् पदार्थ नहीं है।

[२९]

तुमने लिखा—'मुझमें प्रेमका अभाव है, यह त्रुटि है, इसीसे तुम्हारा पत्र नहीं आया।' सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। तुमसे अधिक प्रेमवाले किसीको पत्र दिया जाता तो तुम्हारा ऐसा लिखना ठीक था। तुम्हारे प्रेमविषयक समाचार……कहे होंगे, तुम्हारे मिलनेकी इच्छा विदित हुई। तुम्हारी ऐसी ही उत्कण्ठा हो तो मैं कलकत्ते आ सकता हूँ। परन्तु किसी कामके निमित्तसे ही आना ठीक है, क्योंकि पूज्य श्रीमाताजी बिना कारण मेरे कलकत्ते रहनेमें अपनी कम सम्मति प्रकट करती हैं और तुमने लिखा—'मुझमें प्रेमका अभाव है, इसके दूर होनेका कोई उपाय लिखना चाहिये।' सो ठीक है। अभाव तो नहीं है, कम है। पूर्ण प्रेम तो श्रीनारायणसे ही करना चाहिये। निष्कामभावसे श्रीनारायणमें

कैसे प्रेम हो सकता है, इस विषयमें·····की चिट्ठीमें लिखा है, वह पढ़ सकते हो। हर समय नामका जप और स्वरूपका चिन्तन करनेसे प्रेम बढ़ सकता है। भगवान्‌के गुणानुवाद और स्वभावको सत्संगद्वारा जाननेसे उसका प्रभाव जाना जाता है। तब उसमें प्रेम और मिलनेकी उत्कण्ठा उत्पन्न होती है। यदि उसकी दयालुता, सुहृदता और मित्रताकी ओर ध्यान दिया जाय तो उससे मिले बिना रहा ही कैसे जा सकता है? इस प्रकार मर्म जान लेनेपर तो बिना ही परिश्रम भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन रह सकता है। जबतक भगवान्‌का प्रभाव नहीं जानते तभीतक संसारका चिन्तन होता है। भगवान्‌का प्रभाव जान लेनेपर उसमें श्रद्धायुक्त पूर्ण प्रेम हो जाता है, फिर दूसरा चिन्तन हो ही नहीं सकता। .....के साथ इस बार तुम्हारा यहाँ आना न हो सका और न कलकत्तेमें ही इस बार विशेष संग हुआ। इसपर तुमने अपने प्रेमकी त्रुटि मान ली होगी। सो ऐसा नहीं मानना चाहिये। मेरे पास जितने लोग रहें, उन सभीका पूर्ण प्रेम थोड़े ही समझा जा सकता है। प्रेम होना चाहिये। मिलना भले ही कम हो। मैं तो प्रेमीका हूँ। स्वयं श्रीनारायण भी अपने प्रेमीके अधीन हैं। इसलिये पूर्ण विशुद्ध प्रेम तो श्रीनारायणमें ही करना चाहिये।

तुम्हारे मनमें मिलनेकी विशेष उत्कण्ठा हो तो भी श्री·····जी आदिकी आज्ञा बिना न आना। श्रीपूज्य माताजीकी आज्ञा भी प्राप्त करनी चाहिये। आजकल सत्संग कैसा होता है? निरन्तर ऊँचा और मूल्यवान् साधन करना चाहिये। समय तो बीता जा ही रहा है, उसको उत्तम-से-उत्तम काममें बिताना चाहिये।

[३०]

भगवान्‌की स्मृति अधिक रहनेका उपाय पूछा, सो वह संसारसे वैराग्य और भगवान्‌में प्रेम होनेसे रह सकती है। केवल बातें लिख देनेसे कुछ नहीं हो सकता; धारण करनेसे ही होगा।

सत्संग एवं सद्‌ग्रन्थोंद्वारा भगवद्भजन, भक्ति, ध्यान, वैराग्य तथा ज्ञानकी बातें एवं भगवान्‌के प्रभाव और गुणानुवादकी बातें प्रेमसहित सुनने-पढ़नेसे भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम होनेपर भगवान्‌की स्मृति बहुत ही अधिक रह सकती है।

इस प्रकार साधन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे निरन्तर भगवान्‌का स्मरण हो सकता है। फिर भगवान्‌की प्राप्ति तो हुई ही पड़ी है। उनको फिर भगवान्‌के मिलनेकी गर्ज भी नहीं रहती, भगवान् ही उनके पीछे-पीछे फिरते हैं।

सच्चिदानन्दमय सगुणरूप भगवान् श्रीकृष्णकी मनमोहिनी मूर्तिको अपने हृदयसे कभी बिसारना नहीं चाहिये; पर उसके रहस्यको जाने बिना इस प्रकार बन नहीं पड़ता। और जब श्रीनारायणके परम रहस्यको कोई जान लेता है तो फिर उसके लिये भगवान्‌के स्वरूपको भुलाना सम्भव नहीं। फिर उसको सब जगह वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही भासित होते हैं जैसे गोपियोंको होते थे।

उस मोरमुकुटधारी, वंशीविहारीकी माधुरी मूर्ति और मीठी वाणीमें जब एक बार सुरति समा जाती है तो फिर वह लौटकर नहीं आती। चित्त उसीमें फँस जाता है। भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त उसे किसी औरका ज्ञान ही नहीं रहता। तब वह प्रेमी भक्त आनन्दमय हो जाता है। उसके लिये नारायणके सिवा और कुछ भी नहीं रहता।

[३१]

आपने लिखा कि 'भगवान्‌की स्मृति बहुत ही कम रहती है,' सो भगवान्‌की स्मृति रहनेके विषयमें……के पत्रमें लिखा है। इधर आपका समय ठीक नहीं बीतता, इसका कारण आप ही जान सकते हैं। मैं इतनी दूरसे कैसे अनुमान लगा सकता हूँ? या तो आपके सांसारिक झंझट अधिक रहते होंगे अथवा भगवद्भक्तोंका संग कम होता होगा। प्रधान तो ये दो ही कारण अनुमान किये जाते हैं। आपसे बहुत पीछे जो लोग साधनमें लगे थे वे भी आपसे आगे बढ़ गये। शुरू-शुरूमें आपकी बड़ाई अधिक हो गयी थी, उसे सुनकर आपको कहीं कुछ अभिमान तो नहीं हो गया? क्योंकि……आपके भजनकी बहुत ही प्रशंसा किया करता था। जो हुआ सो हुआ, अब भी चेत जायँ तो कुछ नहीं बिगड़ा है। अब भी सब बात बन सकती है!

बहुत-से पुरुषोंका बहुत उत्तम और तेज साधन देखकर भी आपको उत्साह क्यों नहीं होता? यदि कहें कि 'कुछ तो होता है' परन्तु वह कुछ नहीं, जब कि आप उस उत्साहके अनुसार कार्य नहीं करते तब फिर नाममात्रके उत्साहसे क्या होता है? फिर भी न होनेसे तो उत्तम ही है, परन्तु यह उन लोगोंसे आगे बढ़ा देनेवाला उत्साह नहीं है। आपको यदि भगवद्विषयपर पूरा विश्वास है तो फिर एक पलकी भी देर आप क्यों कर रहे हैं? संसारको यदि स्वप्नतुल्य मिथ्या समझते हैं, तो फिर इस मिथ्या जगत्‌के लिये अपना अमूल्य समय क्यों व्यर्थ गँवा रहे हैं? संसार पूर्णरूपसे मिथ्या न समझमें आवे तो भी यह क्षणभंगुर तो प्रत्यक्ष ही देखनेमें आता है। एक श्रीनारायणको छोड़कर कोई भी ऐसी वस्तु संसारमें नहीं है, जो नित्य हो। फिर शरीरकी तो बात ही क्या है। एक दिन इस शरीरका अवश्य ही नाश होना है। अतः इस शरीरके भस्म होनेसे पहले-पहले ही जो कुछ करना हो, कर

लेना चाहिये। एक पलका भी विलम्ब क्यों करते हैं? आपको किस वस्तुकी आवश्यकता है? जिसके लिये आप जीवनके अमूल्य समयका अमूल्य काममें उपयोग नहीं करते।

[३२]

सच्चिदानन्दघन परमात्मासे भिन्न जो कुछ भी भासता है, वह है नहीं। इस प्रकार समझकर, जो कुछ भी चिन्तनमें आता है उसका खयाल छोड़कर जो बच रहे उसको अचिन्त्य सच्चिदानन्द समझकर उसीमें स्थित होना चाहिये। इस प्रकार अधिक अभ्यास करनेपर अचिन्त्यके ध्यानकी स्थिति हो सकती है।

जलमें बर्फकी तरह अपने शरीरको आनन्दमें डुबोकर शरीरको ढहा दे। फिर आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है। इस प्रकार ध्यान करनेसे सच्चिदानन्दके स्वरूपमें स्थिति हो सकती है।

श्रीसच्चिदानन्दघनका भाव अर्थात् होनापना और शरीर तथा जो कुछ भी चिन्तनमें आ जाता है उन सबका अत्यन्त अभाव अर्थात् दृश्यमात्र कुछ है ही नहीं इस प्रकारका दृढ़ निश्चय, ऐसा होनेसे एक सच्चिदानन्दके अतिरिक्त सबका अभाव होकर परम आनन्दमय एक सच्चिदानन्दघन ही सर्वत्र अभिन्नरूपसे रह जाता है, वही परमपद है, वही परब्रह्म है और वही अमृत है।

जो मनुष्य ध्यानके मर्मको जान लेता है, बिना ही चेष्टाके उसका ध्यान हर समय बना रहता है। जबतक ध्यान करनेमें कोई परिश्रम मालूम होता है तबतक ध्यानका मर्म ही नहीं जाना गया। ध्यानका मर्म जान लेनेपर तो फिर ध्यानमें आनन्द-ही-आनन्द है। उस आनन्दमयका ध्यान अपने-ही-आप होता रहता है। वह तो फिर कुछ भी नहीं चाहता।

[३३]

आपका पत्र मिला। कृपा, दया तो भगवान्‌की सबपर सदा ही बनी है। उन्हींकी कृपासे सब कुछ बनता है। परन्तु उनकी वह कृपा भजन किये बिना समझमें नहीं आती और कृपाका प्रभाव जाने बिना कृपाकी प्रतीति नहीं होती, तब उद्धार भी कैसे हो? विश्वास ही सार है। बिना विश्वासके नारायणमें प्रेम नहीं होता, बिना प्रेमके नारायण मिलते नहीं और नारायणके मिले बिना संसारसे उद्धार होनेका और कोई भी उपाय नहीं है।

जिस बातसे एक-दो दिन भी भगवान्‌में कुछ प्रेम होता हो, उसी बातको निरन्तर सुनने, पढ़नेकी चेष्टा करनी चाहिये। जब दिन-रात निष्काम प्रेमभावसे जप होने लगे, फिर तो मनुष्य किसी प्रकारसे भी संसारके लोभमें नहीं फँस सकता; क्योंकि जब भगवान्‌के प्रेमका सच्चा लाभ प्रत्यक्ष दीखने लगता है, तब भजन अपने-ही-आप होने लगता है। फिर विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ती। उस ओरका आनन्द नहीं जाना जाय तभीतक भजन करना कठिन हो रहा है।

पिछले पाप तो सभीके बहुत ही किये हुए होते हैं, परन्तु भगवान्‌के नाम-जपके प्रतापसे वे सभी पाप भस्म हो जाते हैं; फिर कुछ भय नहीं रहता। भजन होता रहे तो कोई चिन्ताकी बात नहीं।

जब ही नाम हृदय धर्‌यो, भयो पापको नास।
जैसे चिनगी अग्निकी, परी पुराने घास॥

पिछले पापोंकी कौन जाने और जाननेकी आवश्यकता भी नहीं। भगवन्नामजपसे वे सभी नाश हो जाते हैं। इसलिये बहुत तत्परतासे नामजप ही करना चाहिये। कलियुगमें नामजपके समान और कोई भी उपाय नहीं है। एकमात्र भगवन्नामजप ही

सार है। इसलिये जिस उपायसे नामजप हो सके पूरी चेष्टासे उसीमें लग जाना चाहिये। रामायणमें कहा है—

कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥

यदि भगवन्नामका जप नहीं होता है तो आपका भगवान्में विश्वास ही नहीं है। यही समझना चाहिये। नहीं तो और क्या कारण समझा जाय? अतः एक बार विश्वास करके भगवान्के नामका जप और ध्यान करना चाहिये। फिर सांसारिक लोभ नहीं रह सकेगा। आप सांसारिक आनन्दको आनन्द मान रहे हैं, इसीसे आप उसमें फँस रहे हैं। आपको विचार करना चाहिये कि संसारमें आकर मैंने क्या किया? पशुमें और मुझमें क्या अन्तर है? खाना, सोना और विषयभोग तो पशु भी करते हैं, फिर पशुसे अधिक आपको क्या आनन्द मिला? इस प्रकार विचारकर देखनेसे मालूम होगा कि हमारा जन्म लेना व्यर्थ ही हुआ; केवल दस महीने माताको बोझ ही ढोना पड़ा। अब भी चेत जायँ। नहीं तो पीछे पछतानेसे कुछ भी नहीं बनेगा। अन्तमें भगवान्के भजन बिना कोई भी काम नहीं आवेगा। सब यहीं रह जायगा, शरीर भी साथ नहीं जायगा, फिर औरकी तो बात ही क्या है?

[३४]

तुमने लिखा कि 'भाईजी! मेरा तो कुछ जोर नहीं है' सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। जहाँ प्रेम है वहाँ बहुत जोर है।

तुमने लिखा कि 'पूर्ण इच्छा होनेपर मिलाप होना रुक नहीं सकता' सो ठीक है। मिलना भले ही देरसे हो, प्रेम अधिक बढ़ाना चाहिये; प्रेम ही प्रधान है।

अपना सभी समय निरन्तर प्रेमपूर्वक भगवान्के नामजप और ध्यानमें बीते, सारा पुरुषार्थ लगाकर वही चेष्टा करनी चाहिये।

एक क्षणकी भी जोखिम नहीं रखनी चाहिये। कालका जरा भी विश्वास नहीं करना चाहिये।

[३५]

आपने लिखा कि 'डाकगाड़ीमें जानेसे जैसे जल्दी पहुँचा जा सकता है, इसी प्रकारका कोई उपाय होना चाहिये।' सो, जो मनुष्य उपाय होना चाहेगा, वह तो उसीके अनुसार चेष्टा भी करेगा ही। मेरा लिखना भी ऐसा ही है कि यह उपाय जल्दी होना चाहिये, नहीं तो पीछे पछतानेसे कुछ भी नहीं बनेगा। चेष्टा करनेसे उपाय होनेमें क्या विलम्ब है? सत्संग और भजन कम होता है, इसमें पुरुषार्थकी ही कमी समझनी चाहिये। चाहे जितने भी सांसारिक काम हों, भगवान्‌के नाममें प्रेम होनेपर भजनमें भूल अधिक नहीं हो सकती। काम करते हुए ही नामजपकी यादगारी अधिक रहे, वही चेष्टा करनी चाहिये।

दूकानके आदमियोंका तथा सांसारिक लोगोंका संग करनेसे भजन कम होता हो तो उनका संग कम करना चाहिये। जब भगवान्‌में पूर्ण प्रेम और विश्वास हो जायगा तब तो चाहे जितना विषयी मनुष्योंका संग हो, फिर भगवान्‌की स्मृति भूली नहीं जा सकती। भजन और सत्संग अधिक होनेपर ही विश्वास और प्रेम हो सकता है। इसलिये भजन-सत्संगकी ही विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

कृपा-दया तो भगवान्‌की सभीपर सदा ही पूर्ण रहती है। उसे जान लेनेपर मनुष्य भगवान्‌को कभी भूल नहीं सकता। जान लेनेपर उसका चिन्तन किस प्रकार छोड़ा जा सकता है?

आपने लिखा—'किसी समय तो मुकद्दमेका काम लीलामात्र

दीखने लगता है।' तब तो बहुत ही आनन्दकी बात है, फिर तो उस मुकद्दमेकी चिन्ता भी नहीं रहनी चाहिये और एकमात्र नारायणका ही भजन होना चाहिये। मुकद्दमेका चिन्तन मुकद्दमेके दिन ही होना चाहिये अथवा किसी समय याद भले ही आ जाय, परन्तु विशेष चिन्तन न हो। जिनको मुकद्दमेका भय होता है, उनको वह निरन्तर जलाता रहता है। नारायणमें मन लगानेके लिये मुकद्दमेकी तरह मृत्युको याद रखना चाहिये। सबसे बड़ा मामला तो नारायणके घर है, उसका न्याय करनेवाले भगवान् आप हैं। उनका छोटा हाकिम यमराज है। यमराजकी अदालतमें नहीं जाना पड़े वही चेष्टा करनी चाहिये। शरीरको लेकर मुकद्दमा चल रहा है, आप कहते हैं यह मेरा है, पर असलमें यह आपका है नहीं। आपके पास क्या प्रमाण है? कुछ भी है नहीं। मुकद्दमा हो ही रहा है। आखिर इस शरीररूपी मकानको अवश्य खाली कर देना पड़ेगा। प्रसन्नतासे छोड़ देंगे तो आपकी लायकी है, नहीं तो बेइज्जती होगी। शरीर आपका है नहीं। आपके पास इसका कोई प्रमाण भी नहीं है कि शरीर मैं हूँ और शरीर मेरा है। जो जीवित रहते हुए ही शरीरका आश्रय त्याग देता है, शरीरको मुर्देके समान समझ लेता है वही उत्तम है, वही जीवन्मुक्त है। इस शरीरको पहलेसे ही मुर्देके समान समझकर इसमेंसे अपनेपनका भाव निकालकर, जो पुरुष एकमात्र नारायणमें अपनेपनका भाव कर लेगा उसीकी पेश आवेगी। नहीं तो बेइज्जती होगी। शरीर तो छोड़ना ही पड़ेगा। इसलिये पहले ही इसमें अभिमान छोड़ देना अच्छा है। जबतक शरीर है उतने समयतक इससे काम लेना चाहिये। एक दिन तो अवश्य ही इसे खाली करना पड़ेगा। जबतक आपका इसपर अधिकार है अच्छी तरह शीघ्रतासे इससे काम ले लेना चाहिये। इसमेंसे भजन, ध्यान,

सत्संगरूपी अमृत तो निकाल लेना चाहिये, जिससे बादमें पछताना न पड़े।

भगवान्‌के भजन, ध्यान तथा सत्संगके बिना 'मैं और मेरा' यह भाव नाश होना कठिन है। भगवान्‌का भजन बहुत कीमती है, यही तुम्हारे काम आवेगा। समय बड़ा अमूल्य है इस प्रकारका अवसर मिलना बहुत ही कठिन है, जो ऐसा समझेगा वह तो अपने अमूल्य समयको अमूल्य काममें बितावेगा।

कोड़े लगानेवाला मैं कौन हूँ? इस प्रकार नहीं लिखना चाहिये। कोड़े तो गुरु लगा सकते हैं। यदि कोड़े लगवानेकी आवश्यकता हो तो किसी सच्चे निष्काम प्रेमी गुरुकी शरणमें जाना चाहिये। शरण भी ऐसी हो कि कुछ भी हो सब गुरुके आज्ञानुसार ही करे। प्राण भले ही चले जायँ, अपने प्रणको नहीं छोड़ना चाहिये।

प्रेमपूर्वक भजनमें ऐसा मग्न हो जाय कि शरीरका ज्ञान ही न रहे। तब आनन्द-ही-आनन्द है। भजन-सत्संग कम होनेमें आलस्य ही विशेष कारण जान पड़ता है। काम करते हुए अधिक भजन होना तभीतक कठिन है जबतक प्रेम कम है। सत्संग तो महीनेभरके लिये भले ही न हो, परन्तु सत्संगमें प्रेम होना चाहिये। यदि पूर्ण श्रद्धा, प्रेम और निष्कामभाव हो तो सत्संग तो एक पलका भी बहुत है।

आपके ससुरालका हाल जाना। इस विषयमें आपको ससुरका पक्ष नहीं करना चाहिये। माता-पिता जो कहें उसी प्रकार करना चाहिये। आपके पिताजीकी आत्मा दुःखी हो तो आपको अपने ससुरके पास भी नहीं जाना चाहिये। यदि आपके ससुरालवालोंके हितके लिये वहाँ जाना आवश्यक हो और उसमें आपके पिताजी आदिका भी हित होता हो तो आप अपने पिताजीसे प्रार्थना

करके उनसे आज्ञा लेकर अपने ससुरके पास जा सकते हैं। वे आज्ञा न दें तो कोई उपाय नहीं।

आपने लिखा कि 'मैं निष्काम होकर चलूँ! ऐसा विचार है; मामलेका सुख-दुःख कुछ मानूँ नहीं।' सो ऐसा हो तो फिर चिन्ता ही क्या है?

[३६]

तुम्हारा पत्र मिला, धारणाकी बात जानी। भजन, ध्यानका तीव्र अभ्यास करनेसे हृदय शुद्ध होता है, तभी सच्ची धारणा होती है। पूर्ण प्रेम तो भगवान्‌में ही होनेका उपाय करना चाहिये। वह भजन, ध्यान, सत्संगके तीव्र अभ्यास करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर प्रभुके प्रभाव जाननेसे ही होता है। प्रेमकी बात जानी। मैं तो तुम्हारे प्रेमके अनुसार पूरा पत्र-व्यवहार भी नहीं कर सकता। इस बार बहुत ही कम पत्र लिख सका। मिलनेकी बात भी जानी। प्रेम रहे तो मिलना भले ही कम हो कोई हर्जकी बात नहीं है।

मेरे साथ प्रेम बढ़नेकी बात पूछी सो इसका उत्तर मैं कुछ नहीं लिख सकता; क्योंकि वर्तमानमें तुम्हारा जो प्रेम है उसे देखते मुझे कलकत्ते जानेमें उज्र क्यों होना चाहिये था।

भजन-सत्संगका अभ्यास अधिक होनेसे भगवान्‌के ध्यानकी स्थिति बढ़ सकती है। तुमने अपना साधन कमजोर लिखा; इसका क्या कारण है? तुम्हारे साधनको कौन कम करवा रहा है? तुम किसके दबावसे या मूर्खतासे अथवा कुसंगसे किस हेतुसे साधन कम कर रहे हो? एक भगवान्‌के बिना तुम्हारा और कोई भी नहीं है। तुमको ऐसी किस वस्तुकी आवश्यकता है, जिसके लिये तुम भगवान्-सरीखे प्रिय मित्रके प्रेम-चिन्तनको छोड़कर मिथ्या, क्षणभंगुर संसारके चिन्तनमें अपने अमूल्य समयको बिता रहे हो? संसारका काम निष्कामभावसे अनासक्त होकर करना चाहिये। एक पल भी तुम्हें व्यर्थकी बातोंमें तथा काममें नहीं बिताना चाहिये। भगवान्‌को छोड़कर अन्तमें कोई भी तुम्हारा साथी नहीं है। ऐसा जानकर उस नारायणको एक पलके लिये भी नहीं छोड़ना चाहिये।

[३७]

……सच्चिदानन्द परमात्मामें अनन्यप्रेम होनेके लिये साधन पूछा सो अनन्यप्रेम ही सभी साधनोंका फल है। प्रथम मुख्य प्रेम होना चाहिये। मुख्य प्रेम हो जानेपर भजन, ध्यान और सत्संगके अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता। फिर शीघ्र ही अनन्यप्रेम हो जाता है।

दृढ़ वैराग्य होनेसे भजन, ध्यान निरन्तर अपने-ही-आप होता रहता है। वैराग्यका रहस्य जान लेनेसे ही वैराग्यकी उत्तेजना सदा बनी रहती है और जितना ही भजन, ध्यान और सत्संग होता है, उतना ही मनुष्य वैराग्यका रहस्य जानता है।

संसारमें दृढ़ वैराग्य होनेके लिये भजन, ध्यान और सत्संग ही सुगम उपाय है। इसके अतिरिक्त विचारादि भी उपाय हैं, परन्तु अन्तःकरण शुद्ध हुए बिना विचार ठहरता नहीं। मनुष्य अपनी बुद्धिसे जान भी लेता है कि संसार क्षणभंगुर है; परन्तु अन्तःकरण शुद्ध हुए बिना राग-द्वेष, सुख-दुःख, शोक-मोह आदि हुए बिना नहीं रहते। संसारकी सत्ताका अत्यन्त अभाव नहीं होता। भजन, ध्यान, सत्संग और निष्काम कर्म करनेसे तथा भगवान्‌के प्रेम, भक्ति और ज्ञानकी बातोंके पढ़ने-सुननेसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। विचारकी दृष्टिसे प्रत्यक्ष अनुमान होता है कि संसार, शरीर और भोग, ये सब क्षणभंगुर और नाशवान् हैं। देखते-देखते नाश होते जा रहे हैं। यदि मूर्खतासे कोई इन्हें सत्य भी मान ले तो सुख तो इनमें लेशमात्र भी नहीं है। मूर्खतासे यह जिसको सुख मानता है, विचारकर देखनेसे उसमेंसे दुःख और शोकके ही भण्डार निकलते हैं।

परमेश्वरके ध्यानकी स्थितिके समय संसारको कल्पित समझकर उसे मनसे निकालता रहे तथा उसे मृगतृष्णाके जलवत्

या स्वप्नके संसारकी तरह संकल्पके आधारपर समझे और यह समझे कि जो संकल्प है वह भी सच्चिदानन्द ही है।

मनुष्यको विचार करना चाहिये कि भजन, ध्यान और सत्संग-रूपी अमृतको छोड़कर एक क्षण भी व्यर्थ क्यों बिताया जाय। आनन्दमय भगवान्‌के स्मरण बिना जो समय व्यतीत होता है वही व्यर्थ है। इसके रहस्यको जो समझ लेता है वह भगवच्चिन्तनकी स्थितिको एक सेकण्ड भी कैसे छोड़ सकता है?

आपने लिखा कि ध्यानकी वृत्तियाँ निरन्तर एक सरीखी रहती हुई नहीं अनुमान होतीं। सो ठीक है। सदा एक-सी वृत्ति न रहनेपर भी बहुत समयतक ध्यानमें स्थिति रहती है सो बहुत ही आनन्दकी बात है। एकान्तकी स्फुरणा होती है तो बहुत ही अच्छी है। एकान्तकी स्फुरणा तो सात्त्विकी समझी जाती है। परन्तु संसारके संगमें मनको भय भी किस बातका है? सर्वत्र एक श्रीसच्चिदानन्द ही तो पूर्णरूपसे विराजमान हो रहे हैं। इस प्रकार बहुत अधिक अभ्यास दृढ़ हो जानेपर सर्वत्र एक नारायण-ही-नारायण भासित होने लगते हैं।

पहले आपको ध्यानकी बातें लिखी थीं, उनमें ध्यान नं० २ वाली स्थिति यदि रहे तो काम करते हुए भी कोई अड़चन नहीं। स्फुरणा भी भले ही हो, कोई हानि नहीं है। संसारका अभाव और सच्चिदानन्दघनका भाव (होनापना) देखते रहना चाहिये, फिर कोई हर्ज नहीं। संसारका संग भले ही हो, संसारको अनित्य समझना चाहिये। सभी जगह एक नारायण ही पूर्णरूपसे विराजमान हो रहे हैं। उनके बिना जो कुछ भी भासित होता है सो है नहीं।

सारे संसारको एक सत्-चित्-आनन्दके द्वारा व्याप्त—परिपूर्ण समझना चाहिये; जैसे बर्फका ढेला जलसे व्याप्त है इसी

प्रकार आनन्दघनसे सारा संसार व्याप्त है। इस प्रकार समझता रहे तो फिर संसारका चाहे जितना संग हो, कोई हानि नहीं।

भक्तिके भावसे संसारके काम करते हुए इस तरह समझना चाहिये कि जो कुछ भी है वह सब केवल भगवान्‌के संकल्प-मात्रसे बना हुआ है, सारा संसार लीलामात्र है, भगवान्‌की फुलवाड़ी है। जिसमें भगवान् प्रसन्न हों, उसी प्रकार लीलाकी भाँति कार्य करना चाहिये। जो कुछ भी है सब एक नारायणका संकल्प-मात्र है; ऐसा समझकर जो नारायणकी राजीके अनुसार काम करता है वह इसमें लिपायमान नहीं होता। जो सभी वस्तुओंको नारायणकी समझकर अहंकारसे रहित होकर सब कुछ नारायणके लिये ही करता है, उसीपर नारायण प्रसन्न होते हैं।

इस प्रकारका भाव हो जानेपर भले ही संसारका संग होता रहे, कोई हानि नहीं। यह शरीर भी नारायणका है। काम भी नारायणका है। नारायणके आज्ञानुसार नारायणके लिये, फल और आसक्तिको छोड़कर जो नारायणके इच्छानुसार करता है वह इस संसारके संगमें रहकर भी इससे वैसे ही लिप्त नहीं होता जैसे जलमें रहकर कमल जलसे अलग ही रहता है।

आपने लिखा कि ध्यान करते समय आनन्दकी भी इच्छा नहीं रहे, केवल निरन्तर ध्यान ही होता रहे ऐसी इच्छा रहती है, सो आनन्दकी इच्छा रहे, तो भी कोई हर्ज नहीं है। भगवान्‌के ध्यानकी तथा नामके जपकी लालसा बनी रहे तो भी उत्तम ही है, इसमें भगवान्‌से कुछ माँगना नहीं है।

नाम-जप भगवान्‌के ध्यानसहित हो वह बहुत उत्तम है; केवल ध्यान हो या केवल नामका जप हो और व्यर्थ स्फुरणा न हो तो भी कुछ अड़चन नहीं। परन्तु ध्यानके साथ नामका जप होता रहे तो बहुत ही उत्तम है।

केवल सत्-चित्-आनन्दका ध्यान हो और शरीरका भी ज्ञान न रहे, ऐसे समयमें नामका जप यदि अपने-आप ही छूट जाय तो कोई हानि नहीं। किन्तु निद्रा, आलस्य नहीं आना चाहिये।

[३८]

तुमने लिखा कि मुझे चिन्ता वास्तवमें तो नहीं होनी चाहिये, परन्तु मायाका प्रभाव इतना बलिष्ठ है कि चिन्ता, राग-द्वेषादि एवं सुख-दुःख हुए बिना नहीं रहते, बलात् हो जाते हैं, सो ठीक है। यह सब त्रिगुणात्मक मायाका ही कार्य है। इसका उपाय पूछा सो निष्काम प्रेम और गुप्तभावसे ध्यानसहित निरन्तर नामका जप ही प्रधान उपाय है। गीतामें भी कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(७।१४)

भाई, माया तो अति दुस्तर ही है, परन्तु भगवान्‌की शरण लेनेके बाद वह दुस्तर नहीं रह जाती। भगवत्‌का भजन-ध्यान ही उससे तरनेका एकमात्र उपाय है। भगवान्‌का आसरा लेकर भी हम यदि मायाको दुस्तर ही मानते हैं तो हमने भगवान्‌का प्रभाव ही कहाँ जाना? इसलिये भगवान्‌की शरण भली प्रकार लेनी चाहिये। पीछे कोई चिन्ता नहीं।

यों तो हरिके नामका प्रभाव सदा ही है, परन्तु कलियुगमें विशेष है, सो प्रकट ही है। इस समय हरिनामके बिना मायासे तरना वास्तवमें कठिन है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥

[३९]

और तुमने लिखा कि जबतक शरीरमें अहंभाव और संसारमें सत्ताकी प्रतीति रहती है तबतक मनुष्य बिना हुए ही अपने ऊपर भार मान लेता है, सो ठीक ही है। तुमने लिखा कि अन्तःकरण शुद्ध हुए बिना इन सबको मिथ्या मानना असम्भव है, सो भी ठीक है। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये हरिके नामका जप, परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान और सत्संग एवं निष्काम कर्म आदि उपाय शास्त्रमें लिखे हैं।

नाम-जपके साथ, शरीरसे पृथक् होकर, यह शरीर मैं नहीं, यह शरीर मैं नहीं, इस प्रकार बारम्बार मनन करनेसे भी शरीरमें अहंभावका अभाव हो जाता है।

एक सच्चिदानन्द सर्वव्यापक परमात्माके होनेपनेका भाव और उसके बिना और सबका अभाव देखनेसे तथा संसारको मिथ्या, स्वप्नवत् कल्पित देखनेका अभ्यास करनेसे भी संसारकी सत्ता और शरीरमें अहंभावका अभाव हो सकता है।

[४०]

आपने हर समय भगवन्नाम याद रहनेका उपाय पूछा, सो भगवान्में प्रेम और संसारके प्रति तीव्र वैराग्य होनेसे भगवान्की स्मृति हर समय हो सकती है। इसके लिये भी भगवान्के नामका जप प्रसन्नतापूर्वक करनेका अभ्यास करनेकी पूरी चेष्टा करनी चाहिये। चेष्टा करना ही वास्तविक उपाय है। समयको अमूल्य समझना चाहिये और बहुत उत्साहके साथ भगवान्की ओर लगना चाहिये। संसारका चिन्तन भगवान्की प्राप्तिमें बहुत बड़ा बाधक एवं अपने लिये घातक है, ऐसा जाने। संसारका चिन्तन

करते हुए जो मरेगा उसको संसारकी ही प्राप्ति होगी और जो भगवान्‌का चिन्तन होते हुए मरेगा उसे भगवान् ही प्राप्त होंगे ऐसा जान लेनेपर कौन मूर्ख भगवान्‌को भूलेगा। जो भगवान्‌को छोड़ संसारका चिन्तन करता है उसको मूर्ख समझना चाहिये।

[४१]

आपने लिखा कि भगवान्‌का भजन निरन्तर हो ऐसा अभ्यास जल्दी होना चाहिये, सो यही ठीक है। आपके अन्दर इस प्रकारकी इच्छाका होना बहुत ही उत्तम एवं प्रशंसाके योग्य है। इस प्रकारकी तीव्र इच्छा रहनेसे निरन्तर अभ्यास रहना कोई बड़ी बात नहीं। आपने लिखा कि भूल बहुत पड़ती है, सो ठीक ही है। संसारका अभ्यास बहुत दिनोंसे करते आये हैं, इसीसे भूल पड़ती है। यह भूल यदि आपको सहन न होगी तो अपने-आप कम हो सकती है। जबतक भगवान्‌में पूर्ण प्रेम नहीं होगा तबतक भूलका सर्वथा मिटना सम्भव नहीं। आपने लिखा कि भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम होना चाहिये, सो मेरा भी लिखना है कि यह अवश्य होना चाहिये। आपके अन्दर इस प्रकारकी इच्छा रहेगी तो फिर अधिक ढील होनेमें कोई कारण नहीं दिखायी देता। भगवान्‌के गुणोंकी बातें पढ़ने-सुननेसे तथा भजन-ध्यानका विशेष चेष्टापूर्वक तीव्र अभ्यास करनेसे भगवान्‌में प्रेम होकर चिन्तन हर समय हो सकता है। आपने लिखा कि भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान रखते हुए नामका जप होना चाहिये, सो सत्संगके अभ्याससे उसका प्रभाव जान लेनेसे ऐसा हो सकता है। भजन-ध्यानको सबसे उत्तम माना जाय तभी भजन-ध्यान हो सकता है। भजनको सच्चे मनसे सर्वोत्तम मान लेनेके बाद दूसरा चिन्तन अपने-आप कम होने लगेगा, सो भी थोड़े ही दिन होगा!

संसारका चिन्तन जब आपके मनको अच्छा नहीं लगेगा तब भगवान्‌का ही चिन्तन अधिक होगा। आपने लिखा कि भजन-ध्यान करते समय भगवान्‌का ध्यान छूटकर संसारका चिन्तन बरबस होने लगता है, सो ठीक ही है। संसारका चिन्तन हमारे लिये बड़ा घातक है। जो संसारका चिन्तन करते हुए मरेगा उसे संसारकी ही प्राप्ति होगी और जो भगवान्‌का चिन्तन करते हुए मरेगा उसे भगवान् ही प्राप्त होंगे। जो इस भेदको समझ जायगा उसे संसारका चिन्तन सहन नहीं हो सकता। ऐसा होनेपर यदि फिर भी संसारका चिन्तन बलात् होगा तो वह थोड़े ही दिन टिकेगा। संसारके चिन्तनका जब चोटकी भाँति दर्द होगा, तब अपने-आप चेत हो जायगा। हम जितनी ही अधिक चोट सहते हैं उतनी ही अधिक चोट हमें लगती है। आपने लिखा कि स्मरणमें भूल बहुत होती है, वह जल्दी मिटनी चाहिये, सो उसे मिटानेकी सच्चे मनसे चेष्टा होनेसे भूलका मिटना कौन बड़ी बात है। आपने फर्रुखाबादसे चिट्ठी दी, जिसमें लिखा था कि हर समय प्रेमपूर्वक भगवान्‌का स्मरण होना चाहिये, सो हर समय स्मरण तो प्रेम होनेपर ही होगा। चाहे जिस प्रकारसे हो, भगवान्‌का चिन्तन प्रेमपूर्वक हर समय होना चाहिये। इस प्रकारकी इच्छा रखनी चाहिये, इस तरहकी इच्छा भी बहुत उत्तम है। समय बीता जा रहा है। गया हुआ समय वापस नहीं आता। समय बहुत ही अमूल्य है। इसको अमूल्य काममें ही लगाना चाहिये। समयको जो अमूल्य काममें बितावेगा उसे फिर कभी पछतावा नहीं करना पड़ेगा। समयका मूल्य जान लेनेपर [सफलतामें] विलम्ब नहीं है।

[४२]

काम करते हुए भगवान्का ध्यान करते रहनेका उपाय पूछा, सो निम्नलिखित रूपसे समझना चाहिये—

(१) निर्गुणका ध्यान—चलते-फिरते, उठते-बैठते सर्व-व्यापक परमात्मामें स्थित रहते हुए संसारको असत् समझकर और शरीरसे पृथक् होकर द्रष्टा—साक्षीरूपसे सच्चिदानन्द परमात्माके ही स्वरूपमें एकीभावसे स्थित रहकर प्रयत्न करना चाहिये।

यदि सगुण भगवान्में प्रेम हो तो काम करते हुए सगुण भगवान्का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

(२) सगुणरूप श्रीकृष्णभगवान्की मनमोहिनी मूर्तिको सब जगह देखते हुए काम करे। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिकी ओर देखती हुई पतिके इच्छानुसार सब काम करती है, उसी भाँति उस भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मोरमुकुटधारी, वंशीवटविहारीकी माधुरी मूर्तिको अपने नेत्रोंके सामने देखता हुआ काम करता रहे। जहाँ-जहाँ नेत्र जाय वहाँ-वहाँ ही श्रीवासुदेव श्यामसुन्दरकी मूर्तिकी भावना करे और जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ भी आनन्दमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मूर्तिका चिन्तन करते हुए, मनको भगवान्में रखते हुए सांसारिक काम करता रहे। ज्यों पतिव्रता स्त्री अपने पतिमें मन रखते हुए संसारका काम करती है उस प्रकार करनेसे साधन परिपक्व हो जाता है।

उसे एक श्रीकृष्णभगवान्के सिवा और कुछ नहीं भासता और वह आनन्दमें ऐसा मगन हो जाता है कि उसे आगे जाकर अपने शरीरका भी भान नहीं रहता। वह गोपियोंकी भाँति मुग्ध हो जाता है। भगवान् बड़े प्रेमी हैं। जो ऐसे भगवान्की दोस्ती छोड़कर सांसारिक तुच्छ स्त्री और अपने शरीरका दास होकर

उनमें प्रेम करता है, वही पशु है। समय बीता जा रहा है। जो भी कुछ सांसारिक वस्तुएँ देखनेमें आती हैं, सब नाशवान् हैं, ऐसा जानकर इनसे प्रेम छोड़कर सत्यस्वरूप भगवान्से ही प्रेम करना चाहिये क्योंकि भगवान् तो केवल प्रेम ही चाहते हैं।

[४३]

आपका पत्र मिला। सांसारिक व्यसन चाहे जितना प्रबल हो, कोई डरकी बात नहीं, यदि प्रेमपूर्वक निरन्तर नारायणके नामका जप होता रहे। रास्ता सुधरनेका इससे बढ़कर और क्या उपाय है?

भगवान्के गुणानुवाद और उनके प्रभावकी बातें सत्संगद्वारा सुननेकी चेष्टा करनी चाहिये। फिर पूर्वसंस्कार चाहे जितने बलवान् हों, श्रीनारायण-नामके निरन्तर जपके प्रभावसे पूर्वके समस्त बुरे संस्कार नष्ट हो सकते हैं, परन्तु भजन हुए बिना कुछ भी उपाय नहीं है। भजन न होनेमें सत्संग, प्रेम और पुरुषार्थका अभाव ही प्रधान कारण समझा जाता है। पुरुषार्थहीनका भगवान् भी उद्धार नहीं कर सकते अथवा नाशवान् क्षणभंगुर संसारकी संगति अधिक होती होगी। इसके सिवा दूसरा कारण तो मेरी समझमें कुछ नहीं आता।

सत्संग तो सभी जगह प्राप्त हो सकता है, परन्तु होता है खोज करनेपर। प्रबल इच्छा हो और तदनुसार पुरुषार्थ किया जाय तो सत्संग अवश्य प्राप्त हो सकता है। अपने-आप घर बैठे ही सत्संगका मिलना तो उत्तम प्रारब्ध होनेपर ही सम्भव है।

भगवान्में प्रेम हो जानेपर तो सांसारिक प्रेम अपने-आप ही कम हो जाता है। सांसारिक प्रेमको हटानेके लिये कोई दूसरा साधन नहीं करना पड़ता। अन्तःकरण भगवान्के भजन, ध्यान

और सत्संगसे शुद्ध हो सकता है। यदि भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान निरन्तर प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे और गुप्तरूपसे होता रहे तो, उसके अपने अन्तःकरणकी तो बात ही क्या, उस पुरुषके दर्शनमात्रसे दर्शन करनेवालोंके पाप नाश हो जाते हैं। अधिक क्या लिखा जाय!

कलियुगमें भजनके समान उत्तम साधन मेरी समझमें तो कुछ भी नहीं है। यदि आपको विश्वास हो तो यही चेष्टा करनी चाहिये कि जिससे निरन्तर केवल भजन ही हो। भजनके प्रतापसे ध्यान और प्रेम सब कुछ निष्कामभावसे आप ही हो सकते हैं। पूर्वमें जितने भक्त हो चुके हैं सब भजनके ही प्रतापसे हुए हैं।

[४४]

तुमने लिखा कि कीर्तनमें विशेष प्रेम किस प्रकार हो—सो कीर्तन करनेसे ही कीर्तनमें प्रेम होता है और कीर्तन अधिक सत्संगसे होता है।

व्यर्थके काममें भले ही चित्त चलायमान रहे, बुद्धि भी चाहे खराब रहे, परन्तु प्रेम और ध्यानसहित यदि नारायणके नामका जप निरन्तर होता रहे तो सारे दोषोंका नाश होकर स्वयं नारायण दर्शन दे सकते हैं। श्रीनारायण तो प्रेमके ही अधीन हैं।

तुमने लिखा कि मुझे कोई एक 'मन्त्र' बताइये। सो गायत्री-मन्त्रका तो स्नान आदि करके शुद्धतापूर्वक एक आसनसे ही जप करना चाहिये। मेरी समझमें जिनकी प्रभुके निराकाररूपमें भक्ति है उनके लिये 'ॐ' मन्त्रका जप उत्तम है।

मन्त्र-जप करनेवाले विष्णुभक्तके लिये एकान्तमें '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' और सब समय 'राम' नामका जप उत्तम है। जिनकी भक्ति शिवजीमें है उन पुरुषोंके लिये एकान्तमें '**ॐ**

नमः शिवाय' और सर्वकालमें 'शिव' नामका जप उत्तम है। सब अवतारोंमें जिन पुरुषोंकी भक्ति है उनके लिये '***हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥***' सदा-सर्वदा इस मन्त्रका जप उत्तमोत्तम समझा जाता है।

---

[४५]

आपने भगवान्‌में मन लगनेका उपाय पूछा, सो जाना। सत्संग एवं भजनका बहुत चेष्टाके साथ अभ्यास होनेपर भगवान्‌में मन लग सकता है। इसमें अभ्यास ही प्रधान उपाय है। वास्तवमें अभ्यास होनेसे जब अन्त:करणका मल नाश हो जाता है तब भगवान्‌में प्रेम होता है। जब भजनकी कीमत मालूम हो जाती है और भजनकी सबकी अपेक्षा बहुमूल्यता जान ली जाती है तब भजनको छोड़कर दूसरा काम होता नहीं, भगवान्‌से अतिरिक्त दूसरी जगह मन लगता नहीं। यदि संसारके काम होते हैं तो भजनके साथ ही होते हैं। भजन एक अमोलक वस्तु है, भजनके समान कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकारका विश्वास होनेपर भजन अधिक होने लगता है। इस प्रकारका विश्वास भी भगवान्‌की कृपा, सत्संग और भजन होनेसे ही होता है।

आपने लिखा कि आपकी और हमारी बात अलग-अलग नहीं है, सो ऐसा प्रेम हो तो भी संसारका व्यवहार तो मर्यादाके अनुसार ही होना चाहिये। प्रेम दूसरी चीज है, जहाँ लेन-देनके व्यवहारका प्रेम है वहाँ संसारका प्रेम है और जहाँ विशुद्धभावसे भगवद्विषयको लेकर प्रेम है वही असली प्रेम है। आपने लिखा कि संसारका काम अच्छा लगता है सो भले ही लगता रहे, भजनको कीमती समझकर हर समय करते रहना चाहिये। विश्वासपूर्वक हर समय भगवान्‌को स्मरण रखनेकी बहुत चेष्टा

रखनी चाहिये। भगवान्‌का मर्म जान लेनेके बाद भगवान्‌के भजनके बराबर और कुछ नहीं मालूम होता, फिर तो बिना चेष्टाके ही भजन हुआ करता है।

[४६]

तुमने लिखा कि सब समय भगवान् याद आते नहीं सो ठीक है, अभ्यास करते रहनेसे प्रेम होकर सब समय याद आने लग जाते हैं। जैसे संसारके जिस काममें बहुत प्रेम होता है वह चित्तमें बस जाता है; वैसे ही प्रेम अधिक होनेपर भगवान् मनमें बस जाते हैं।……तुम्हारा नाम ही घरवालोंने अच्छा रखा है, तुम्हारे नामका अर्थ है भगवान् शिवजीका दिया हुआ, सो भाई! इस बहाने भी भगवान् शिवजी याद आ जायँ तो भी बहुत लाभ है। शिवका कल्याणरूप तो तुम्हारे नामके साथ ही याद आ जाना चाहिये। अर्थपर निगाह रखनेसे ऐसा हो सकता है।

[४७]

……तुम्हारा नाम भी घरवालोंने उत्तम ही रखा है।……नाम तो श्रीकृष्णभगवान्‌का है सो तुम्हारे नामके साथ श्रीकृष्ण-भगवान्‌का स्मरण हो जाना चाहिये। अपने भक्तोंके मनको मोहनेवाला, व्रजवासियोंके मनको मोहनेवाला, अपनी मायासे सारे संसारको मोहनेवाला, विस्मित करनेवाला तथा भरमानेवाला होनेसे श्रीकृष्णभगवान्‌का नाम मोहन है। ऐसा समझकर तुम्हारे नामकी यादके साथ श्रीकृष्णभगवान्‌की याद आवे तो कौन बड़ी बात है?

तुमने लिखा कि इस जगह सत्संग बहुत कम है सो ठीक है, श्रद्धा-भक्तिके साथ सत्संगकी खोज करनेसे प्रायः सभी जगह सत्संग

मिल सकता है। जिसे सत्संगसे प्रेम होगा वह जहाँ कहीं भी सत्संग खोज लेगा उसे सत्संग मिल जायगा। प्रेमकी कमीके कारण थोड़ा विलम्ब भी हो सकता है, परन्तु सत्संगकी बहुत अधिक उत्कण्ठा होनेपर तो शीघ्र ही मिल सकता है। सत्संगका विध न बैठनेपर स्वयं भगवान् ही उससे साधुरूपमें मिल सकते हैं।

समयकी कीमत शीघ्र जान लेनी चाहिये। दिन बीते जा रहे हैं। गया समय फिर हाथ आता नहीं, ऐसा जानकर बड़ी शीघ्रतासे बहुत ऊँचे काममें लग जाना चाहिये और उसीमें समयको बिताना चाहिये। दिन बीत जायँगे, मृत्युका समय समीप आ जायगा, फिर कोई उपाय नहीं चलेगा। ऐसा जानकर असली काम बनानेके लिये जल्दी तैयार हो जाना चाहिये, फिर आनन्द-ही-आनन्द है।

---

[४८]

समय बीता जा रहा है। जो समयको अमूल्य जान लेगा, वह एक पल भी व्यर्थ काममें नहीं बितायेगा। भगवत्-चिन्तनके बिना जो किसी दूसरे काममें समय बिताया जाता है वही व्यर्थ है। जिसको भगवान्‌के नाम और ध्यानमें आनन्दरूपी अमृतका रस मिलने लगता है वह उसको छोड़ नहीं सकता। आनन्दमयके ध्यानमें कुछ कष्ट नहीं है। ध्यान तो बड़ी प्रसन्नताके साथ अनायास ही होता रहता है। भगवान्‌की प्राप्तिके साधनमें कुछ कष्ट नहीं है, भूलसे कष्ट मालूम होता है, भगवान्‌की प्राप्तिका साधन तो बहुत ही सुलभ है।

---

[४९]

अब तुम्हारा भजन-ध्यान कैसा बनता है? तुम्हें सावधान होकर एक पलक भी जहाँतक बन सके भजन-ध्यानके बिना नहीं जाने देना चाहिये। जबतक संसारमें आकर निरन्तर ध्यानका साधन नहीं किया, तबतक कुछ नहीं किया। जिसे संसारका चिन्तन करते समय मृत्यु मारेगी, वह संसारमें चक्कर लगाता फिरेगा और भगवान्‌के भजन-ध्यानमें जिसके प्राण जायँगे उसको भगवत्प्राप्ति होगी। इससे सब समय भगवान्‌के नामका जप और भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। कुछ भरोसा नहीं कि मृत्यु किस समय आ जाय।

जो जीते ही श्रीभगवान्‌में युक्त हैं उनकी तो बात ही क्या है। वे तो जीवन्मुक्त हैं, उनके तो दर्शन ही लाभदायक हैं। ऐसे पुरुषोंका मिलना तो भगवान्‌की कृपासे ही होता है। उनसे मिलनेके बाद कुछ बाकी नहीं रह जाता। जिस दिन ऐसे पुरुष मिल जायँगे उसी दिन उनके समान होनेमें कोई शंका नहीं है। जबतक वैसा नहीं होता, तबतक उनका मिलना हुआ ही नहीं; साधारण मनुष्योंके साथ ही मुलाकात हुई।

---

[५०]

आपका पत्र मिला। पिछले पाप चाहे जितने हों, कोई चिन्ता नहीं। निरन्तर निष्कामभावसे भजन होना चाहिये। फिर पिछले सब पाप भजनके प्रतापसे नाश हो सकते हैं—

जब ही नाम हृदय धर्‌यो, भयो पापको नास।
मानौ चिनगी अग्निकी, परी पुराने घास॥

कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥

कृपा-दयाकी बात नहीं लिखनी चाहिये। कृपा-दया तो कृपासिन्धुकी सबके ऊपर बनी ही है। समय बीता जा रहा है, असली कमाईको नहीं छोड़ना चाहिये। शरीर, भोग तथा संसारको मिथ्या जानकर उनका आसरा छोड़कर श्रीनारायणका आश्रय लेना चाहिये। संसारके काममें थोड़ा समय बिताना चाहिये। पेट तो अपना पशु भी भरते ही हैं, उत्तम उसीको समझना चाहिये कि जो दूसरेके हितके लिये अपने प्राण भी देनेके लिये तैयार है। सभी लोग स्वार्थमें डूबे पड़े हैं। चेतना चाहिये। मनुष्यके शरीरका असली फल प्राप्त करना चाहिये।

[५१]

आपने लिखा कि……आये, पीछे नामजपकी चेष्टा ज्यादा हो रही है सो नामजपकी चेष्टा ज्यादा रहनी ही चाहिये। आपने लिखा कि ध्यानके वास्ते जब बैठता हूँ, तब अनेकों प्रकारकी फुरनाएँ होने लगती हैं सो श्रद्धा, भक्तिसहित नामका जप और मनसे सगुण भगवान्‌का ध्यान हो, इसकी चेष्टा करनी चाहिये, फिर कोई हर्ज नहीं। आपने लिखा कि वैराग्यके लिये विवेकपूर्वक विचारका अभ्यास ज्यादा करनेकी चेष्टा करता हूँ सो ठीक है। विचारसे भी वैराग्य होता है, परन्तु भजन, ध्यान, सत्संगका तीव्र अभ्यास करनेसे शीघ्र ही तीव्र वैराग्य हो सकता है। आपने लिखा कि फुरना ज्यादा रहनेके कारण मन स्थिर नहीं होता, जिससे ठीक-ठीक ध्यान नहीं हो पाता। एकमात्र नामजपके आधारसे ही रहता हूँ सो ठीक है। निरन्तर प्रेमसहित एकमात्र नामके जपका आधार रहनेपर तो सब बातें आप ही हो सकती हैं। केवल प्रेमसहित नामजपका अभ्यास होनेके लिये ही शास्त्र और सत्संगके अभ्यासकी चेष्टा करनी चाहिये। फिर कोई चिन्ता नहीं। ध्यान और वैराग्य उसके अधीन हैं।

जो कुछ हो उसीमें आनन्द मानना चाहिये। सब प्रभुकी दृष्टिके सामने होता है, उसमें अपने मनको मैला करना मालिकका तिरस्कार करना है और मालिककी शरणमें कलंक लगाना है। सब कुछ मालिकका है, ऐसा समझना चाहिये। स्वामी अपनी वस्तुको चाहे जिस प्रकार बरते, सब उसीका है। मैं भी उसीका हूँ, मेरा तो कुछ है ही नहीं। ऐसा मानकर हर समय आनन्दमें मग्न रहते हुए प्रेमसहित निरन्तर श्वासद्वारा नामका जप होता रहे ऐसी चेष्टा करनी चाहिये।

नामके जपके साथ-साथ भगवान्‌की मोहिनी मूर्ति याद आनेके लिये विशेष चेष्टा रखनी चाहिये। उसको अपने मनसे और नेत्रोंसे कभी न भूले, हर समय अपने सामने देखता हुआ प्रसन्नचित्तसे आनन्दमें ही मग्न होता रहे।

[५२]

चिट्ठी भेजी सो पहुँच गयी है। तुम भी तो मेरे मित्र ही हो, पर भाई! धनसे तुम्हारी तृप्ति नहीं होती, तब क्या उपाय हो? तुम्हारी भूखका कुछ पता नहीं लगता। तुम्हारे पास इतने रुपये हैं कि तुम उनका ब्याज भी नहीं खर्च कर सकते, फिर भी काम बढ़ाते जाते हो, यह दुःखका मूल है। अधिक धन लेकर क्या करोगे? सब लोग धनको यहीं छोड़कर चले जाते हैं। तुम्हारे साथ भी कुछ नहीं जायगा। इसलिये जल्दी ही सचेत हो जानेकी आवश्यकता है। यदि तुम इस समय भी चार-छः घंटेका समय भजनके लिये नहीं निकाल सकते तो पीछे ऐसा मौका कब मिलेगा?

तुम्हारा यह लिखना कि 'आपकी नजर रहनेसे सब कुछ ठीक हो सकता है' केवल लिखनामात्र है। मैंने तो बहुत बार लिखा और कहा, पर तुम उसे ध्यानमें नहीं लाते तो मेरा क्या

वश है? मनुष्यकी 'नजर' किस काम आवेगी? नजर तो केवल भगवान्‌की चाहिये और वह सबपर बहुत अच्छी है ही; परन्तु कोई इसपर ठीक-ठीक विश्वास करे तब तो!

तुम मुझे अपना मालिक बनाते हो और अपनी देख-रेखका भार मुझपर सौंपते हो सो भाई! इस प्रकार लिखने और कहनेमात्रसे कुछ भी काम नहीं बनेगा। यदि तुम मेरे भरोसे रहकर भजन नहीं करोगे तो मुझे तो इसका परिणाम पीछे पछताना ही नजर आता है। भजन ही तुम्हारा उद्धार कर सकता है। मुझमें कोई सामर्थ्य नहीं है। यदि तुम संसारके दुःखरूपी जालसे निकलकर सच्चे और पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति करके सदाके लिये सुखी होना चाहते हो तो मनसे सब कुछ छोड़कर केवल भगवान्‌के नाम-जप, ध्यान और सत्संगमें सदाके लिये अपनेको लगा दो। यदि मनुष्य धीरे-धीरे संसारके सब विषयोंसे प्रेम करना छोड़कर एकमात्र आनन्दस्वरूप भगवान्‌की भक्तिमें लग जाय तो बेड़ा पार हो सकता है। यह बहुत बड़ी चिन्ताकी बात है कि तुम्हारे-सरीखा मित्र भी इन बातोंको सुनी-अनसुनी कर दे।

भगवान्‌में ऐसी लौ लगानी चाहिये कि शरीरकी सुधि भी न रहे। यदि सब समय एक-सी लगन लगी रहे तो उद्धार होना कौन बड़ी बात है? भगवान् कहते हैं कि जो हर समय उनमें लौ लगाये रहता है, वह अन्तमें उन्हींमें समा जाता है—

जैसी लौ प्रथमहिं लगी तैसी ही रहि जाय।
जाके हिरदै लौ बसै सो मोहि माहिं समाय॥

अतः आनन्दस्वरूपको छोड़कर तुम क्यों दुःखरूप संसारमें हर समय लौ लगाते हो? यदि तुम्हें विश्वास है तो किसलिये मिथ्या रुपयोंमें मग्न हो रहे हो? मग्न तो केवल भगवान्‌में होना

चाहिये और ऐसा होना चाहिये कि मन उन्हींके आनन्दमें रम जाय, उनके सिवा और कुछ भासे ही नहीं—

औरै सुरति बिसारि सब लौ लगि रहै असंग।
आव जाव कासे कहूँ मन रातो हरि रंग॥

तात्पर्य यह कि मनके आनन्दरूपमें रम जानेपर वह स्वयं भी आनन्दरूप हो जाता है। फिर दुःख तो स्वप्नमें भी नहीं भासता। जिस पुरुषका मन इस प्रकार भगवान्‌में रम जाता है, उसको अपना सारा कुटुम्ब और धन झंझट मालूम होने लगता है, फिर पीछे झंझट बढ़ानेवाले कामकाज भी आप-से-आप कम होने लगते हैं।

रुपयोंमें प्रेम होनेसे रात-दिन रुपये पैदा हों, इस प्रकारकी चेष्टा तथा उसी विषयकी स्फुरणाएँ हुआ करती हैं, जो मनुष्यको चैन नहीं लेने देतीं। इसी प्रकार भगवान्‌में प्रेम होनेसे और वे किस प्रकार मिलें, इसी विषयका चिन्तन होनेसे भगवान्‌की ही स्फुरणा होने लगती है। सो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

भजनका अभ्यास हर समय करते रहना चाहिये, चाहे इससे कोई नाराज ही क्यों न हो। नहीं तो पीछे बहुत पछताना पड़ेगा। कोई दूसरा काम नहीं आवेगा। यह सारा संसार एक दिन भस्म हो जानेवाला है—

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी केस जरै ज्यों घास।
सब जग जलता देखि कै भयो कबीर उदास॥

एक दिन सबका यही हाल होगा। काल, अपने आगमनकी किसीको सूचना नहीं देते, वे तो प्रतिक्षण मुँह बाये खड़े हैं। भगवान्‌ने आठ पहर चौंसठ घड़ी हमें रुपये कमाने और पेट भरनेके लिये नहीं भेजा है; चौरासी लाख योनियोंके भोगोंको भोगनेके उपरान्त बड़ी कठिनाईसे यह मनुष्य-शरीर हमें मिला

है। अतः मनुष्यजन्मका वास्तविक उद्देश्य समझकर जगत्‌के मिथ्या प्रपंचोंको छोड़ देना चाहिये और उस उद्देश्यकी सिद्धिमें प्राणपणसे लग जाना चाहिये—

जीवन मरन बिचारि कै कोरे काम निवार।
जिन पंथा तोहि चालना सोई पंथ सँभार॥

इसलिये भाई! यदि तुमसे भगवान्‌के भजनका पुरुषार्थ नहीं हो सका तो पीछे बहुत पछताना पड़ेगा। अन्तसमयमें भगवान्‌के सिवा कोई दूसरा तुम्हारी सहायता नहीं कर सकेगा। संसारके दुःखरूपी समुद्रमें डूब रहे हो, यदि इससे उद्धार पाना है तो भगवान्‌को भजो फुरसत न मिलनेका बहाना न करो। यहाँ किसीको फुरसत नहीं मिलती, परन्तु मरनेके समय सबको फुरसत मिल जाती है। समय बहुत तेजीसे बीतता चला जा रहा है, मृत्यु नजदीक है, उसे कोई एक पलके लिये भी नहीं टाल सकता। केवल भजन ही सहारा है। इसलिये तन-मनसे भजन करनेमें लग जाओ।

[५३]

आपने मनको स्थिर करनेका उपाय पूछा सो ठीक है। भगवान्‌के नामका जप, ध्यान और सत्संग आदि करनेसे तथा संसारके ऐश-आराम, स्वाद और शौकीनीसे वैराग्यका अभ्यास करनेसे मन स्थिर हो सकता है। कुछ उपाय नीचे लिखे जाते हैं—

१-मन जहाँ-जहाँ जाय, वहाँ-वहाँ भगवान्‌के स्वरूप-चिन्तनका अभ्यास करना चाहिये।

२-अथवा मन जहाँ-जहाँ जाय, वहाँ-वहाँसे खींचकर भगवान्‌के स्वरूपमें लगाना चाहिये।

३-सत्संगकी बातोंको बहुत उत्तम और अनमोल समझकर मनको उन्हींमें लगाना चाहिये।

४-भगवान्‌के नामका जप मुँहसे या श्वासद्वारा लगातार करनेका अभ्यास करना चाहिये।

५-संसारमें जितनी भी वस्तुएँ दीखती हैं, सब नाशवान् हैं। इस प्रकारकी धारणा करनेसे भी वैराग्य होकर मन स्थिर हो सकता है।

६-संसार और शरीर सब क्षणभंगुर हैं; भोग सभी रोगरूप हैं तथा अन्तमें ग्लानि तथा दुःख उत्पन्न करनेवाले हैं, इस प्रकार समझनेसे भी जगत्‌से वैराग्य होकर मन स्थिर हो सकता है।

७-अथवा अपनी जो सबसे प्यारी वस्तु हो, उसमें भगवान्‌की भावना करके मनको स्थिर करनेका अभ्यास करना चाहिये।

और भी कई प्रकारके उपाय हो सकते हैं। इनमेंसे एक उपाय भी अच्छी प्रकार कर लिया जाय तो मन स्थिर हो सकता है और भगवान्‌के भी दर्शन हो सकते हैं। इसलिये किसी-न-किसी उपायका अवलम्बन अवश्य करना चाहिये। जो मनुष्य-शरीर पाकर अपना एक पल भी व्यर्थके काममें बिताता है, वह अपने बहुमूल्य रत्नको धूलमें मिला देता है।

[५४]

मनुष्यको प्रतिक्षण भगवान्‌का भजन-ध्यान करना चाहिये। प्रत्येक समय ध्यानपूर्वक नाम-जप करना ही सार है।

रग रग बोले रामजी रोम रोम रंकार।
सहजे ही धुनि होत है सोई सुमिरन सार॥

इस प्रकारका स्मरण हृदयमें हर समय होता है। यदि उसमें मन लगा रहे तो फिर आनन्द-ही-आनन्द है। तथा हृदयमें बिना

ही जपे जाप हो रहा है, उसमें मन लग जाय तो फिर क्या कहना है। भीतर जप तो हो ही रहा है, उसकी ओर ध्यान रखना चाहिये।

अजपा सुमिरन घट बिषै दीना सिरजनहार।
ताही सों मन लगि रहा कहै कबीर बिचार॥

निष्कामभावसे जितना ही अधिक ध्यान और जप हो, उतना ही अधिक करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यही असली काम है।

[५५]

आपने पूछा कि हर समय प्रेमका आविर्भाव किस प्रकार हुआ रहे सो ठीक है। भगवान्‌के गुण, प्रभाव, नाम एवं स्वरूपके स्मरणसे ऐसा हो सकता है। यही नहीं, बहुत अधिक अभ्यास होनेसे तो निरन्तर प्रेम रह सकता है। किसी वस्तुका आविर्भाव तो उसके पूर्वकालमें तिरोभाव होनेपर ही होता है, सो प्रेमका तिरोभाव होने ही क्यों दिया जाय? जो प्रेम निरन्तर बना रहता है, उसीकी महिमा है। अतः प्रेमको अक्षुण्ण बनाये रखनेका अभ्यास करना चाहिये।

आपने लिखा कि जिस प्रेमसे स्वयं श्रीभगवान् ही संतरूपमें दर्शन दें, वह प्रेम किस प्रकार हो सो ऐसा प्रेम ध्यानसहित भगवन्नाम-जप तथा सत्संगके तीव्र अभ्याससे हो सकता है। विश्वासपूर्वक चेष्टा करनेसे ही अभ्यास बढ़ता है। अपनेमें पुरुषार्थकी न्यूनताका अनुमान करके निराश नहीं होना चाहिये। बल्कि उसके परायण होकर उसके लिये पूरी चेष्टा करनी चाहिये। सच्चिदानन्दघन भगवान्‌का ध्यान निरन्तर बना रहे, इस प्रकारकी कामना भले ही रहे, कोई हर्ज नहीं। इस तरहकी इच्छा

तो साधन बढ़ानेमें हेतु है। जबतक निरन्तर साधन नहीं होने लगता, तबतक इस प्रकारकी उत्कण्ठा अवश्य रहनी चाहिये। प्रेमसहित भगवान्‌के ध्यानकी तीव्र लालसाका नाम ही उत्कण्ठा है। भगवान्‌में प्रेम और संसारसे तीव्र वैराग्य होनेके बाद तो बिना चेष्टा किये ही भगवान्‌के ध्यानमें निरन्तर स्थिति रहती है। परन्तु प्रेम और वैराग्यके लिये सत्संग और भजनकी तीव्र चेष्टा ही उपाय है।

जितना समय ऊपर लिखे हुए साधनोंके करनेमें बीतता है, वही सर्वोत्तम है। संसारके कामोंमें मन लगाकर बिताये हुए समयको तो धूलमें गया समझना चाहिये और ऐसा समझनेसे ही साधनमें उत्तेजना हो सकती है। साधनके लिये उत्तेजना होना ही साधनमें वृद्धिका हेतु है। भगवान् सच्चिदानन्दरूपसे सर्वत्र पूर्ण हो रहे हैं; परंतु ऐसा विश्वास न होनेके कारण ही वे प्राप्त होकर भी अप्राप्त-से दीखते हैं। विश्वास न होनेका कारण अनादिकालीन अविद्या ही है।

किसी समय सत्संग, भजन और ध्यानके प्रतापसे श्रीभगवान्‌के सच्चिदानन्दरूपकी क्षणिक प्रतीति हो जानेपर भी फिर भूल जानेका कारण पूछा सो इसका कारण पहलेका असत् अभ्यास और विषयासक्ति ही है। उसको सुधारनेके लिये भजन, ध्यान और सत्संगका तीव्र अभ्यास करना चाहिये। तभी संसारकी आसक्ति और रमणीयताकी अनुभूति क्षीण हो सकती है।

भगवान्‌में मन लगानेका उपाय पूछा सो प्रेम होनेसे ही मन लग सकता है। प्रेम उत्पन्न होनेके लिये सबसे प्रथम श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भजन और सत्संगकी चेष्टा करनी चाहिये। चेष्टाकी वृद्धि होनेपर मन अपने-आप ही रम सकता है।

भगवान्‌का भजन-ध्यान करते हुए संसारका काम करनेमें

भूल हो जानेकी बात आपने लिखी सो ठीक है। बहुत सावधानीसे भजन-ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। काम भले ही थोड़ा हो। जबतक परिपक्व साधन निरन्तर नहीं होने लगता तबतक भूलें होती ही हैं। साधन तेज करनेका उपाय भजन-सत्संगकी तीव्र उत्कण्ठा ही है।

जिस प्रेमके आगे प्राणोंका मूल्य कुछ भी नहीं है, उसके मर्मको जाननेका आपने उपाय पूछा सो वैसा प्रेम उत्पन्न होनेसे ही उसका मर्म जाना जा सकता है। प्रेमकी उत्कण्ठा रखनेसे ही प्रेमकी वृद्धि होती है। पहले तो विश्वासके आधारपर ही प्रेम करना पड़ता है, पीछे जैसे-जैसे मर्म जाना जाता है, वैसे-वैसे प्रेम बढ़ता जाता है।

[५६]

श्रीनारायणदेव और उनके भक्तोंके वही चीज काममें आ सकती है, जिसमें किसीका ममत्व न हो। जबतक किसी चीजपर किसीका ममत्व बना रहता है, तबतक वह भगवान्‌के अर्पण नहीं हो सकती। जब संसारका एक साधारण सत्पुरुष भी किसी दूसरेकी वस्तुको काममें नहीं लाता, तब भगवान् किस तरह काममें ला सकते हैं? यद्यपि सब कुछ भगवान्‌का ही है, परन्तु जबतक मनुष्य किसी वस्तुपरसे अपना अधिकार हटा नहीं लेता तबतक श्रीनारायणदेव उसे स्वीकार नहीं करते।

जैसे कभी किसी भले आदमीके घरमें कोई पक्षी अण्डा दे देता है तो जबतक अण्डा फोड़कर उसके बच्चे उड़ नहीं जाते एवं जबतक वह पक्षी उस घोंसलेसे अपना सम्बन्ध रखता है, तबतक वह भला आदमी उस जगहपर अपना अधिकार नहीं जमाता। यद्यपि वह लोकदृष्टिमें सब प्रकारसे अपने उस

मकानका मालिक है, उसका मकानपर पूरा अधिकार है, फिर भी वह उस स्थानको अपने अधिकारमें नहीं लेता।

इस प्रकार जब एक साधारण दयालु पुरुष भी दूसरेके अधिकारमें गयी हुई अपनी वस्तुको अपने अधिकारमें नहीं लेता, तब श्रीनारायणदेव और उनके मर्मको जाननेवाले उनके प्रेमी भक्त कब ऐसी किसी वस्तुको अपने उपयोग एवं अधिकारमें ले सकते हैं? अर्थात् कभी नहीं ले सकते। जब उस पक्षीके बच्चे उड़ जाते हैं तथा वह पक्षी भी उस घोंसलेको छोड़कर चला जाता है, तब मकान-मालिक उस जगहको काममें लेता है। पक्षीके उड़ जानेपर मकान-मालिक चाहे तो उसके घोंसलेकी लकड़ियोंको भी काममें ला सकता है, क्योंकि अब उस पक्षीका उस घर और घोंसलेमें ममत्वभाव नहीं रह गया। चाहे घरका मालिक अब उस घोंसलेमें आग ही क्यों न लगा दे, उस पक्षीको उसके ऐसा करनेसे कोई सुख-दुःख नहीं होगा। इसी प्रकार जब कोई मनुष्य ममता छोड़कर भगवान्‌की किसी वस्तुको भगवान्‌के अर्पण कर देता है, तब श्रीनारायणदेव बहुत हर्षके साथ उस वस्तुको अपने काममें ले लेते हैं।

भगवान्‌के भक्तोंकी भी ऐसी ही बात है; क्योंकि भक्त तो अपने मालिकके अनुसार ही चलते हैं। जो स्वामीकी आज्ञा और रुचिके अनुसार चले, वही तो भक्त है। ऐसे ही भक्तोंके लिये श्रीनारायणदेव अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं जैसा कि श्रीगीताजीके अध्याय ४ श्लोक ११ में लिखा है। जो भक्त अपना सर्वस्व भगवान्‌के अर्पण कर देता है, श्रीनारायणदेव भी अपना सर्वस्व उसके अर्पण कर देते हैं। फिर भी भक्तको यह भाव कदापि नहीं रखना चाहिये कि अपना सब कुछ दे देनेपर श्रीनारायणदेवका सब कुछ मुझे मिल जायगा। ऐसा भाव रखने-

वाला श्रीनारायणदेवका निष्कामी अतिप्रिय भक्त नहीं समझा जाता। उसे तो यही भाव रखना चाहिये कि श्रीनारायणदेवका सर्वस्व मैं नहीं चाहता। मेरी तो यही प्रार्थना है कि श्रीनारायणदेव मुझको तथा अपनी सब वस्तुओंको अपना लें, इसके अतिरिक्त मैं उनसे मुक्ति भी नहीं माँगता। इसपर यदि कोई कहे कि किसलिये तुम ऐसी प्रार्थना करते हो, तो उसका उत्तर यही है कि केवल प्रेमके लिये। इसपर भी कोई पूछे कि प्रेम किसलिये चाहते हो तो उसका उत्तर भी यही होना चाहिये कि प्रेमके लिये ही प्रेम चाहता हूँ और किसी वस्तुके लिये नहीं।

[५७]

आपने भजन-सत्संगके पुरुषार्थकी न्यूनता लिखी, सो उसका कारण समझना चाहिये। भगवान् और शास्त्रोंमें विश्वास होनेसे तथा भजन-सत्संगको सर्वोत्तम समझनेसे ही भगवत्प्राप्तिके पुरुषार्थकी वृद्धि होती है। आपने लिखा कि भीतरके संकल्प बहुत उठते हैं—इतने उठते हैं कि उनका कुछ ठिकाना नहीं, सो ठीक है। संकल्पके त्यागसे ही संकल्पका नाश हो सकता है। जो कुछ संकल्प उठे उसको मिथ्या जानकर उसका तिरस्कार कर देना चाहिये अर्थात् व्यर्थ समझकर उसे छोड़ देना चाहिये। संसारकी ओरसे हर समय बेपरवा रहना चाहिये। संसारके संकल्प अर्थात् चिन्तनको प्रतिक्षण भुलानेकी चेष्टा करनी चाहिये और आनन्दमूर्ति भगवान्‌के दिव्य स्वरूपको चित्तमें जमाये रहना चाहिये। इससे संकल्पोंका नाश तो होगा ही, भगवान्‌की स्मृति भी सदा बनी रहेगी, जो भगवत्प्राप्तिका प्रधान साधन है।

आपने पहले लिखा था कि 'आपकी चिट्ठी पढ़कर आनन्द

तो बहुत हुआ, किन्तु आपकी लिखी बातें मुझे लगीं नहीं।' सो ठीक है। परन्तु आपको मेरी बातोंसे आनन्द हुआ, यह भी कैसे समझा जाय? सच्चा आनन्द तो उसीको समझना चाहिये जो किसी बातको धारण करनेसे होता है। आपने आनन्दकी बात लिखी, सो आपकी कृपा है। धारण भी उन्हींकी बात होगी, जिनकी आज्ञाओंको कोई टाल नहीं सकता। मैं तो आपकी कृपा और प्रेमके कारण जो मनमें आता है, लिख देता हूँ और इसीलिये आपको मेरी बातोंसे आनन्द भी आता है। यदि आपकी प्रीति न होती तो आपको मेरा पत्र पढ़नेसे आनन्द ही नहीं आता।

आप जिस कामके लिये आये हैं, उसे जल्दी पूरा करना चाहिये। समय बीता जा रहा है। जो समय भगवान्‌के ध्यानमें, नाम-जपमें तथा सत्संगमें बीतता है, वही रहता है। जो समय संसारके कामोंमें जाता है, वह व्यर्थ बीत जाता है। आपको एक पल भी संसारके मिथ्या कामोंमें नहीं लगाना चाहिये। यदि संसारका काम शरीरसे करना ही पड़े तो भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान करते हुए ही करना चाहिये। प्रतिदिन ऐसी ही चेष्टा करनी चाहिये और चेष्टा भी बहुत जोरकी होनी चाहिये। आजतक जितनी चेष्टा की, उससे बहुत अधिक चेष्टा करनी चाहिये। ऐसी आदत डाल लेनी चाहिये कि भगवान्‌के ध्यानके बिना एक पल भी न रहा जाय तथा उसके अतिरिक्त और कोई बात अच्छी न लगे। आँख और कान भगवान्‌की ही बात देखें-सुनें, मन भगवान्‌के भजन, ध्यान और सत्संगमें ही रमा रहे तथा संसारके अन्य सब कार्योंसे विरक्ति हो जाय—ऐसी चेष्टा बराबर करते रहना चाहिये। भय, संकोच, मान और बड़ाई,

सब कुछ छोड़कर एकमात्र ध्यानसहित नारायणके नामकी ही शरण लेनी चाहिये। वही आपका है। बाकी सब तो मिथ्या है, कल्पित है, स्वप्नवत् है। ध्यान ऐसा होना चाहिये कि शरीरका भी ज्ञान न रहे। आपको एकान्तमें निरन्तर साधन करनेके लिये पर्याप्त समय मिलता है या नहीं? मेरे एक मित्र तो कहते थे कि उन्हें कलकत्तेमें भी करीब १४ घण्टे एकान्तमें साधनके लिये मिल जाते हैं।

[५८]

भगवान्‌की स्मृतिमें भूलें अधिक होती हैं, इसका उपाय तो तीव्र अभ्यासकी चेष्टा ही है और भगवान्‌में प्रेम बढ़ानेका उपाय पूछा, सो भगवान्‌के गुणानुवादको बाँचने, सुनने, कहने और उसके लक्षण, आशय, प्रभावकी ओर लक्ष्य करनेसे भगवान्‌में प्रेमभाव बढ़ सकता है। भजन-ध्यान और सत्संगका तीव्र अभ्यास करनेसे भी भगवान्‌में प्रेम बढ़ सकता है।

भजन-सत्संग अधिक हो, इसके लिये तीव्र इच्छाकी ही आवश्यकता है। किसी वस्तुको पानेकी तीव्र इच्छा होती है, तो उसके लिये प्रयत्न और चेष्टा स्वाभाविक ही अधिक होती है।

जिसको रुपयोंकी आवश्यकता होती है, वह रुपयोंका ही चिन्तन और रुपयोंके लिये ही तन-मनसे चेष्टा एवं प्रयत्न करता है। उसके मनमें हर समय प्राय: इसी बातकी चिन्ता रहती है कि रुपये किस प्रकार पैदा हों! वह रुपया पैदा करनेके विचारमें अपने तन-मनको अर्पण कर देता है। इसी प्रकार जिनको भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा होती है, उनके मन-बुद्धि ऊपर लिखे अनुसार भगवान्‌को अर्पित हो जाते हैं।

कोई आदमी अधिक बीमार होता है और वैद्य कहता है कि अमुक वस्तुके प्रयोगसे रोगी बच सकता है, तब उस वस्तुके लिये जैसी चेष्टा होती है, वैसी ही चेष्टा भजन और सत्संगके लिये होनी चाहिये। तीव्र इच्छा होनेसे ही तीव्र चेष्टा होती है और तीव्र चेष्टा होनेसे ही वस्तुकी प्राप्ति होती है। संसारकी मिथ्या वस्तुएँ तो चेष्टा करनेपर भी शायद न मिलें और मिल जानेपर भी उनसे रोगीको लाभ हो या न हो, परन्तु भजन और सत्संगके लिये जो चेष्टा की जाती है, वह अवश्य सफल होती है। भजन-सत्संगरूपी औषधका लगातार बहुत दिनोंतक सेवन करनेसे जन्म-मरणरूपी बीमारीका अवश्य नाश होता है। सत्‌की चेष्टा कभी व्यर्थ नहीं जाती।

जपमें भूल होनेकी बात लिखी, सो जपका अधिक अभ्यास करनेसे ही जपकी भूल मिटती है। प्रेमके बिना भी प्रसन्नमनसे जपका अभ्यास करते रहनेसे आगे चलकर प्रेमसहित जप भी हो सकता है। जप जिस समय निरन्तर होने लगता है, उस समय प्रेमसहित ही होता है। वैराग्य होनेसे भी बिना चेष्टा किये ही जप और ध्यान निरन्तर होने लगते हैं और भजन, ध्यान, सत्संगसे वैराग्य भी होता है। भगवत्-स्मृति हर समय बनी रहे, ऐसी इच्छा भी भगवान्‌के निरन्तर चिन्तनमें हेतु है। जप करते समय ध्यानको बलात् बढ़ानेका अभ्यास करना चाहिये। वैसा अभ्यास करनेसे जपके साथ ध्यानकी वृद्धि और संसारकी वासनाका क्षय हो सकता है।

सत्ता और आसक्तिसे रहित स्फुरणा हो तो कोई हर्जकी बात नहीं है। संसारकी सत्ता और उसके प्रति आसक्तिके नाशके उपाय जप, ध्यान और सत्संग हैं, अतः उसके लिये तीव्र अभ्यासकी आवश्यकता है। भगवान्‌के नामकी याद हर समय बनी रहनी

चाहिये। ऐसा अभ्यास होनेपर आगे चलकर संसारसे वैराग्य तथा भगवान्‌के स्वरूपमें स्थिति भी हो सकती है।

श्रीपरमात्मदेवकी कृपा तो सदा सबपर है ही, जो ऐसा निश्चय कर लेता है, वही भगवान्‌की कृपाका पात्र है। उसको भगवान् शीघ्र ही मिल जाते हैं; क्योंकि भगवान्‌के बिना मिले उसको चैन ही नहीं पड़ती। संसार और शरीरको मिथ्या तथा नाशवान् देखनेसे और सर्वव्यापी परमात्माको आनन्दस्वरूप देखनेसे भी वैराग्य हो सकता है। संसारसे यदि वैराग्य हो जाय तो संसारका चिन्तन कम हो सकता है और संसारको मिथ्या, कल्पित तथा दुःखरूप देखनेसे संसारके प्रति वैराग्य हो सकता है।

प्रेमका उपाय लिखा ही जा चुका है। भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन, भगवन्नामका जप तथा सत्संग ही प्रेम उत्पन्न करनेके उपाय हैं। जपके लिये जितनी ही अधिक चेष्टा होगी, उतना ही अधिक वह हमसे बन पड़ेगा।

जो आदमी भगवान्‌को सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, दयासिन्धु तथा बिना ही कारण हित करनेवाला जानता है, वह कभी उनसे किसी बातके लिये प्रार्थना नहीं करेगा। यदि प्रार्थना करेगा भी तो केवल प्रेमभावसहित उनके निरन्तर चिन्तनके लिये ही करेगा।

हर समय नाम-स्मरणका अभ्यास हो जानेपर पीछे बहुत समयतक ध्यानकी स्थिति भी रह सकती है। भगवान्‌को याद रखते हुए ही संसारका काम हो, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। संसारके कामोंसे भजन-ध्यान बहुत ही उत्तम और अनमोल है इसलिये संसारके कामोंमें चाहे जितना हर्ज हो जाय, किन्तु संसारके कामोंके लिये भजन-ध्यानमें हर्ज नहीं करना चाहिये।

ऐसी पक्की धारणा हो जानेपर संसारका काम करते हुए भी भजन-ध्यान हो सकता है। संसारके काम नदीके प्रवाहके समान हैं। इसमें पड़कर जो पुरुष भगवान्‌के चरणरूपी नौकाको ध्यानद्वारा पकड़ लेता है अथवा भगवान्‌के नामरूपी नौकाके रस्सेको पकड़ लेता है, वही इसमें डूबनेसे बच सकता है; पर जो नदीके प्रवाहमें बह जाता है, उसकी बहुत दुर्दशा होती है।

दिन बीते जा रहे हैं, आपको मनमें विचारना चाहिये—'मैंने इस संसारमें आकर क्या किया? इसी प्रकार यदि और समय भी बीत गया तो जल्दी कैसे काम बनेगा? समयको अनमोल समझकर अनमोल काममें ही लगाना चाहिये। मरनेके बाद संसारके रुपये और भोग किस काम आवेंगे? असली वस्तु तो वही है, जो भगवान्‌से अधिकाधिक प्रेम करावे। सोनेके और पत्थरके पहाड़ोंमें क्या अन्तर है? शरीर भी मिट्टीमें मिल जानेवाला है। ऐसा जानकर इस शरीरसे पूर्ण लाभ उठाना चाहिये। भगवान्‌के भजन-ध्यानके बिना एक पल भी क्यों जाय? अतः एक-एक पलका हिसाब रखते हुए उसे भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये।

[५९]

आपका पत्र यथासमय मिल गया था, किन्तु समय न मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ तदर्थ क्षमा करें।

गीता अध्याय ८ श्लोक २३ से २५ का उत्तर विस्तारपूर्वक तो कभी आपसे भेंट होनेपर ही दिया जा सकता है, किन्तु संक्षेपमें लिखता हूँ।

(१) निष्काम कर्मयोगी चाहे जिस देश-कालमें मृत्युको प्राप्त हो, उसका पुनरागमन नहीं होता। यहाँ रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन आदि शब्द कालके वाचक नहीं हैं, बल्कि उस मार्गके अभिमानी देवताओंके वाचक हैं, क्योंकि गीता ८। २७ में इसी प्रकरणमें 'सृति' शब्द मार्गका वाचक आया है। यदि रात्रि आदिको काल-वाचक शब्द ले लें तो २४ वें श्लोकमें अग्निः, ज्योतिः और २५ वें श्लोकमें धूम शब्द कालके वाचक नहीं हो सकते। वह अग्निः, ज्योतिः, अहः आदि देवताओंके द्वारा परमधामको पहुँचाया जाकर मुक्त हो जाता है।

(२)क-आवागमनसे छूटनेवाले योगीके लक्षण—योग-मार्गके दो भेद हैं, एक भक्तिप्रधान कर्मयोग, दूसरा कर्मप्रधान कर्मयोग। भगवत्-प्राप्त कर्मप्रधान कर्मयोगीके लक्षण गीता २। ५५ से ७२ तक और भक्तिप्रधान कर्मयोगीके लक्षण गीता १२। १३ से १८ तक देखना चाहिये।

ख-आवागमनसे छुड़ानेवाले साधनरूप योगके लक्षण—कर्मप्रधान कर्मयोगके लक्षण गीता २। ४५ से ५१ तक और भक्तिप्रधान कर्मयोगके लक्षण गीता ८। ७ से १०तक, १२। ६ से १० तक और १८। ५६ से ६६तक विस्तारपूर्वक देख सकते हैं। जब यह अवस्था परिपक्व हो जाती है, तब गीता १६। १ से ३में जो दैवी सम्पदाके लक्षण लिखे हैं वे उसमें आकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

ग-संसारमें पुनरागमन प्राप्त होनेवाले योग और योगीके लक्षण—ऐसे योग और योगीके लक्षण गीता २।४२ से ४४ तक, ७।२० से २३ तक, ८।२५ और ९।२०-२१में देखना चाहिये।

(३) दोनों मार्गोंके जाननेवाले योगीके लक्षण और गति—दोनों मार्गोंको जाननेवाला योगी वही है जो दोनोंमेंसे श्रेष्ठ एक अपुनरागमनके मार्गमें चलता है। उसके लक्षण ८।२० से २२तक और गतिका प्रकरण गीता ८।२३ से २८ तकमें देखना चाहिये।

(४) योग और योगीका स्वरूप—फल और आसक्तिको त्यागकर भगवदाज्ञानुसार भगवत्प्राप्तिके लिये यज्ञ, दान, तप और सेवादि कर्म एवं जप, ध्यान, पूजादि उपासनारूप कर्मोंका करना कर्मयोगका स्वरूप है और ये कर्म जिसमें हों वह कर्मयोगी है।

(५) योग, भक्ति, ज्ञान आदि किसी भी मार्गसे भगवत्प्राप्त पुरुषका, भगवत्प्राप्ति (कल्याण) होनेके उत्तर कालमें अर्थात् जीवन्मुक्त होनेके बाद पुनर्जन्म नहीं होता, चाहे वह किसी भी देश और कालमें मरे; क्योंकि देश और कालादिसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

(६) सकाम कर्म और सकाम उपासना करनेवाला पुनरागमनको प्राप्त होता है। निष्काम कर्म और निष्काम उपासना करनेवाला पुनरागमनको प्राप्त नहीं होता (गीता ५।१२)। यदि अन्त समयमें उसका चित्त योग, ज्ञान या भक्तिके साधनसे विचलित हो जाता है तो वह योगभ्रष्ट होनेके कारण पुनरागमनको प्राप्त होता है, किन्तु पुनः जन्मान्तरमें उसी साधनमें तत्पर होकर परम पदको प्राप्त हो जाता है। यही भगवान्‌का आशय प्रतीत होता है। गीता ६।४० से ४५ तकका अर्थ देखना चाहिये।

[६०]

तुमने लिखा 'मेरा चित्त बहुत व्याकुल है। दशा बहुत खराब है। ऐसी दशा कभी नहीं हुई। आगे क्या दशा होगी कुछ समझमें नहीं आता।' सो भैया! जो हुआ सो तो हो चुका। अब तो चेतना चाहिये। अब तो तुम इस बातको भलीभाँति जान ही गये कि सत्संगके बिना भजन-ध्यान होना कठिन है और भजन-ध्यान हुए बिना दशा बिगड़ जाती है। अतएव अब तुम्हें भजन-ध्यान-सत्संगके लिये ही चेष्टा करनी चाहिये। सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय भी एक तरहसे सत्संग ही है। अतएव जबतक सत्संगकी व्यवस्था न हो तबतक सद्ग्रन्थोंका अभ्यास करना चाहिये।

[६१]

भाई! तुमको जिस कामके लिये मनुष्यशरीर मिला है उसको इस तरह भुलाना नहीं चाहिये। प्रथम तो मनुष्यका जन्म ही बहुत कठिन है; फिर द्विजवर्ण तथा माता, पिता, भाई, स्त्री, बच्चे और व्यापार आदि सबका मनके अनुकूल होना तो बड़े ही भाग्यकी बात है। आवश्यकतानुसार घर-मकान तथा रुपये भी हैं। इस समय भी तुम आत्माके उद्धारका उपाय नहीं करोगे तो फिर कब करोगे? इस प्रकारकी अनुकूल व्यवस्था सदा नहीं रहेगी। इसलिये जबतक मृत्यु दूर है, शरीर आरोग्य है और सब व्यवस्थाएँ भी ठीक हैं, तभीतक जो कुछ उत्तम कर्म करना हो, बहुत शीघ्रतासे कर लेना चाहिये जिससे पीछे पछताना न पड़े। उपर्युक्त व्यवस्थामें दो-चार बातें कम-ज्यादा हो जायँ, अनुकूल न रहें, तो कोई हर्ज नहीं; परंतु अब गाफिल नहीं रहना चाहिये। अब तुम सांसारिक विषयोंमें किस बातकी और अनुकूलता चाहते हो? तुम्हें ऐसी किस चीजकी कमी है, जिसकी पूर्ति करके तुम अपने कल्याणके लिये चेष्टा करोगे। संसारमें एक

श्रीभगवान्‌को छोड़कर और कोई भी तुम्हारा नहीं है। माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, मकान, धन सभी नाशवान् हैं। इनका संग बहुत ही थोड़े दिनोंका है। इनमेंसे कुछ भी तुम्हारे साथ नहीं जायगा और तो क्या, तुम्हारा यह शरीर भी यहीं रह जायगा।

हमलोगोंके संयोग भी सदा नहीं रहनेका। शरीरका कुछ भी भरोसा नहीं। मेरे रहते तुम्हारे द्वारा अपनी परमगतिके लिये विशेष चेष्टा न हुई और मेरा शरीर पहले जाता रहा तो ऐसा अनुमान होता है कि फिर शायद तुम्हारे कल्याणके साधनमें और भी ढिलाई आ जाय।

तुम नाशवान् क्षणभंगुर सांसारिक पदार्थोंके लिये तत्पर होकर जितनी चेष्टा करते हो उतनी यदि श्रीभगवान्‌की प्राप्तिके लिये करने लगो, तो बहुत ही शीघ्र तुम्हें भगवत्प्राप्ति हो सकती है। श्रीभगवान्‌के समान तुम्हारा प्रेमी, दयालु और सर्वशक्तिमान् और कोई भी नहीं है। फिर किसलिये तुम उस सच्चे प्रेमीका प्रेम प्राप्त करनेके लिये उचित चेष्टा नहीं कर रहे हो? तुच्छ रुपयोंके पीछे रात-दिन क्यों लग रहे हो? जब यह शरीर ही तुम्हारे काम नहीं आवेगा, तब रुपये तो किस काम आवेंगे। शरीरके नाशके बाद तो पहले किया हुआ भजन-ध्यान-सेवा-सत्संग और शास्त्रका अभ्यास ही काम आवेगा। शरीरका नाश जरूर होगा। इसे बचानेका कोई उपाय नहीं है। शरीरके नाशसे आत्माका नाश नहीं होगा। अतएव शरीरके नाश होनेके बाद आत्माको सदाके लिये परम आनन्द प्राप्त हो जाय इसीके लिये तत्पर होकर दिन-रात अथक चेष्टा करना मनुष्य-जन्मका कर्तव्य है। इससे सच्चिदानन्द भगवान्‌की प्राप्ति होती है। इसीलिये मनुष्य-जन्म प्राप्त हुआ है। अतएव भगवान्‌की प्राप्तिके लिये तत्पर होकर साधन करना चाहिये।

[६२]

तुम्हारा पत्र मिला, तुमने लिखा, जब हमलोगोंपर दुःख आता है तभी हम आपकी याद करते हैं। निरन्तर याद रखें तो सदाके लिये दुःख मिट सकते हैं, सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। दुःखोंका सदाके लिये नाश तो श्रीभगवान्‌को याद करनेसे ही हो सकता है। इसके समान और कोई भी उपाय नहीं है। श्रीभगवान्‌को याद करनेसे बहुत जल्दी बहुत सुगमतासे भगवान् मिल सकते हैं। गीता अध्याय ८ श्लोक १४ को अर्थसहित पढ़ना चाहिये। कलियुगमें तो इस तरहका दूसरा उपाय है ही नहीं।

तुमने लिखा 'ध्यान क्या वस्तु है—मैं तो यह जानता भी नहीं। काम करते समय भजन भी मुझसे नहीं होता' सो ठीक है। संसारमें ध्यानके समान और कुछ भी नहीं है। भजन, सत्संग, सेवा सब कुछ भगवान्‌के ध्यानके लिये ही है। अतएव ध्यान क्या वस्तु है, इसके जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। भजन तो साधारण चेष्टा करनेसे और भगवान्‌को सबसे उत्तम समझनेसे निरन्तर हो सकता है। गीता अध्याय १५ श्लोक १९ को अर्थसहित देखना चाहिये। भगवान्‌को सबसे उत्तम समझनेके बाद भगवान्‌का भजन छूट नहीं सकता। समझदार आदमी वही काम करता है जिसमें अधिक लाभ हो। यदि यह कहा जाय सोने, चाँदी, लोहे और कोयलेकी किसी भी खानको खोदकर ले सकते हो तो थोड़ा भी समझदार मनुष्य हर समय सोनेकी खान खोदकर सोना निकालनेका ही काम करेगा। इसी तरह भगवान्‌का मर्म या प्रभाव समझनेवाला मनुष्य भी संसारके नाशवान् भोगपदार्थोंको छोड़कर हर समय श्रीभगवान्‌को ही भजेगा।

तुमने लिखा, आपमें जिनका प्रेम है, उनके भी दर्शनसे आनन्द मिलता है सो इस प्रकार मेरी बड़ाईके शब्द नहीं लिखने

चाहिये। तुमने लिखा कि कल्याण तथा आपके पत्र मिले, पढ़नेसे भगवान्‌की स्मृति हुई सो यह तुम्हारे प्रेम, भाव और विश्वासकी बात है।

तुमने लिखा 'मुझमें समझदारी नहीं है। मैं समझदार होता तो आपसे सुनी हुई बातोंको काममें लाता।' सो तुम सुनी हुई बातोंको तो काममें लानेकी चेष्टा रखते हो। तुम मेरी बातें जितनी काममें लाते हो उसके बदलेमें भी तो तुम्हारी मैं सेवा नहीं कर सकता। तुम और भी काममें लाने लगोगे तो फिर मुझसे बदला चुकाना कठिन हो जायगा। तुम्हारे प्रेम, विश्वास, भाव और बर्तावका बदला या प्रतिदान मैं नहीं कर पाता, इसलिये लाचार हूँ। तुम प्रेमके कारण मेरी भूलोंकी ओर ध्यान नहीं देते।

भजन, ध्यान निरन्तर करनेकी चेष्टा रखनी चाहिये। तुमने सत्संगविषयक पत्र लिखनेके लिये कहा था, इसीसे आज यह पत्र लिखा है। विशेष समाचार नहीं लिख पाया। समय बहुत कम मिलता है। परन्तु काममें लानेसे इतनी बातें ही बहुत हैं। तुमको विचारना चाहिये, तुम किसलिये आये हो? क्या करना है और क्या कर रहे हो? संसारकी कोई भी चीज तुम्हारे साथ नहीं जायगी। एक भगवान्‌को छोड़कर और कोई भी तुम्हारा नहीं है। फिर मोहमायाके जालमें फँसे हुए तुम अपने जीवनके समयको व्यर्थ ही क्यों बिता रहे हो? अब चेतना चाहिये। ऐसा अवसर बार-बार मिलना मुश्किल है और कुछ भी न कर सको तो भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगकी चेष्टा तन-मनसे करनी चाहिये। इतना भी नहीं कर सको तो निरन्तर निष्कामभावसे भगवान्‌के नामका जप ही करना चाहिये। इस युगमें केवल नामके जपसे ही श्रीभगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है।

[६३]

समय बीता जा रहा है। गया हुआ समय फिर हाथ नहीं आता। इसलिये जबतक स्वास्थ्य ठीक है, मृत्यु दूर है, तभीतक जो कुछ करना है सो कर लेना चाहिये। जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े। संसारकी दृष्टिसे इस समय तुम्हारे सब कुछ ठीक हैं। इससे अधिक ठीक और क्या होनेवाला है? इस समय भी तुम न चेतोगे तो फिर कब चेतोगे? एक भगवान्‌को छोड़कर तुम्हारा और कोई भी नहीं है। अतएव उस परम प्रेमी भगवान्‌को एक क्षणके लिये भी नहीं भूलना चाहिये। तन, धन आदि कोई भी वस्तु साथ नहीं जायगी। इन सबको देकर बदलेमें साथ जानेवाली वस्तुको खरीद लेना चाहिये। यानी शरीरको भगवान्‌के भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगमें लगाना चाहिये। रुपयोंको परोपकारमें लगाना चाहिये। रुपयोंसे जब अधिकार छिन जायगा तब पछतानेसे कुछ भी काम नहीं होगा। मनुष्यजन्मको सफल बनाना ही मनुष्यत्व है। मनुष्यजन्ममें ही आत्माका सुधार और उद्धार हो सकता है। अन्य किसी भी योनिमें नहीं हो सकता। इस प्रकार समझकर अपना उद्धार शीघ्र हो जाय इसके लिये कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। समयको अमूल्य समझकर अमूल्य काममें ही उसे लगानेकी चेष्टा रखनी चाहिये और कुछ न बन सके तो हर समय ध्यानसहित श्रीभगवान्‌के नामका निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर जप करनेके लिये तो अवश्य ही विशेष चेष्टा करनी चाहिये। नामजपके प्रतापसे भगवत्कृपासे बहुत जल्दी आत्माका सुधार और उद्धार हो सकता है।

[६४]

चिन्ता, शोक, भय कभी नहीं करना चाहिये। यदि मनुष्य करता है तो वह मूर्ख है। सांसारिक भोग-विलास, धन, स्त्री, पुत्रकी वृद्धि देखकर जो प्रसन्न होता है वह भी मूर्ख है और सांसारिक वस्तुकी हानि देखकर जो चिन्ता करता है वह भी मूर्ख है। सर्वत्र भगवान्‌की दया समझकर हर समय प्रसन्न रहना चाहिये। सांसारिक वस्तुओंके हानि-लाभमें भगवान्‌की लीला देखे, बहुत खुशी हो और पद-पदपर भगवान्‌की दया देखे। शरीरमें किसी प्रकारकी बीमारी होनेसे उसे तपस्या समझकर 'मैं तप कर रहा हूँ' ऐसा समझे और खूब प्रसन्नचित्त रहे। भगवान्‌ने दया करके भजन, ध्यान, भगवत्प्राप्तिके लिये मनुष्यशरीर दिया है। सांसारिक भोग-विलासमें इसे नहीं खोना चाहिये। पापी-से-पापी हो तब भी भगवान्‌के भजन, ध्यानसे वह पापसे छूटकर भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। हमसे जो कुछ भी अच्छा काम होता है वह भगवान्‌की दयासे होता है—और जो बुरा कर्म होता है वह हमारे स्वभाव-दोषसे होता है, ऐसा समझकर बुरा कर्म कभी नहीं करना चाहिये। हर समय भजन, ध्यान, सत्संग और सेवाके लिये कटिबद्ध होकर चेष्टा करना ही मनुष्यका कर्तव्य है।

[६५]

पत्र आपका मिला, अब आपकी क्या इच्छा है? आपको किस बातकी जरूरत है? आपको तो अब केवल अपने कल्याणके लिये ही चेष्टा करनी चाहिये। मान-अपमानके बोझ-भारको अलग छोड़कर, जिस कामके लिये आपका संसारमें आना हुआ है, उस कामको ही करनेके लिये तत्पर हो जाना चाहिये और विचारना चाहिये कि क्या

करनेसे कल्याण हो सकता है? मैं जो कुछ करता हूँ इससे कितने समयमें कल्याण हो सकता है? जो इस तरहका विचार करता है वही बुद्धिमान् है, परन्तु जो ऐसी बात अपने मनमें नहीं लाते उन्हें पीछे पछताना पड़ेगा। जब आप यहाँसे कूच कर जायँगे तब इस संसारमें आपका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रह जायगा और न कोई वस्तु आपके काम ही आवेगी। यह शरीर भी आपके काममें नहीं आवेगा; क्योंकि यह आपका नहीं है। उस समय तो एक श्रीनारायणदेवका भजन-ध्यान ही यदि साधन किया गया होगा तो काममें आवेगा या उत्तम काममें यदि आपने कुछ रुपये भगवदर्थ लगाये होंगे अथवा इस शरीरसे किसीका उपकार किया गया होगा तो वह काममें आवेगा। इसलिये आपसे प्रार्थना है अब तो आप अपने जीवनके शेष समयको उत्तम-से-उत्तम काममें बिता सकें, ऐसी आपको चेष्टा करनी चाहिये, जिससे पीछे पश्चात्ताप नहीं करना पड़े। आप इस समय संसारके जालमें फँसे हुए हैं, इसलिये साधनकी विशेष चेष्टा करके इस संसारके मायाजालसे जल्दी निकलनेका उपाय करना चाहिये।

[६६]

पत्र आपका मिला, सत्संगका प्रभाव जान लेना चाहिये, फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं है। इस संसारमें पलभरके सत्संगके समान त्रिलोकीका राज्य भी कोई चीज नहीं है। किन्तु खेद तो यह है कि आपलोग जिस प्रकार रुपयोंका प्रभाव जानते हैं वैसा सत्संगका नहीं जानते; क्योंकि जैसा आपलोगोंका रुपयोंमें प्रेम है, वैसा भगवान्‌में नहीं है। फिर श्रीपरमात्मादेवमें प्रेम हुए बिना सत्संग-भजनमें कैसे प्रेम हो? आपलोग समझते हैं, रुपयोंसे सब कुछ हो सकता है, यह बिलकुल भूल है। रुपयोंसे भगवान् कभी नहीं मिल सकते। भगवान्‌की बात तो दूर रही भगवान्‌के प्रेमी

भक्तोंसे भी रुपयोंके द्वारा मुलाकात नहीं हो सकती। यदि मुलाकात होती है तो प्रेमसे ही होती है। प्रेमके अधीन तो श्रीनारायणदेव स्वयं रहते हैं, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है? संसारमें प्रेमके समान कुछ भी नहीं है। किन्तु प्रेमके प्रभाव और मर्मको कोई प्रेमी ही जानता है, भगवत्‌-विषयक प्रेममें बहुत आकर्षणशक्ति है, किन्तु एक बार लगनेकी जरूरत है। जबतक मनुष्य भगवान्‌के प्रभावको, श्रीनारायणदेवके प्रेमके मर्मको नहीं जानता है, तबतक वह कैसे जान सकता है कि भगवान् क्या वस्तु हैं? श्रीनारायणदेवके प्रेममें जो मग्न हो जाता है, उसके लिये तो नारायणदेव स्वयं तैयार रहते हैं, फिर उसके लिये त्रिलोकीका राज्य भी क्या चीज है? क्योंकि त्रिलोकीके स्वामी ही प्रेमवश उसके सामने हाजिर हैं। अपने भक्तके अधीन हैं। फिर उसके लिये क्या पानेसे बाकी रह गया? भाई! इस प्रकारकी बातोंको जानकर यदि विश्वास कर लिया जाय तो फिर इस काममें अपनेको लगा देनेमें कोई बड़ी बात नहीं मालूम पड़ेगी और संसारके रुपयोंका रोजगार तुच्छ मालूम होने लग जायगा। भले ही कोई नीतिके अनुसार संसारका रोजगार करता भी रहे, किन्तु प्रेम तो उसका एकमात्र भगवान्‌में ही होना चाहिये। भगवत्प्रेमीका भले ही सब कुछ नाश हो जाय, परन्तु उसको इस बातकी चिन्ता नहीं होती; क्योंकि उसका प्रेम तो संसारके इन नाशवान् तुच्छ क्षणभंगुर पदार्थोंमें होता नहीं, उसको तो ये सब प्रत्यक्ष ही नाश हुए दीखते हैं। तब उसका इनमें प्रेम कैसे हो? जो संसारके भोगोंमें आनन्द मानकर उनके लिये मर रहे हैं, वे महामूर्ख हैं, ऐसा भगवान्‌के भक्त और विरक्त लोग कहते हैं; क्योंकि उन्हें तो संसारके सब भोग फीके ही लगते हैं।

[६७]

पत्र आपका मिला, भगवान्‌के भजन-ध्यान करते समय अपने चित्तमें विक्षेपका होना लिखा सो ठीक है। वह विक्षेप नामके जपका तीव्र अभ्यास और विषयोंमें दोषदृष्टि करके वैराग्य करनेसे मिट सकता है; क्योंकि शरीर और रुपयोंकी आसक्ति ही विक्षेप होनेमें प्रधान कारण है। शरीर और रुपये नाशवान् पदार्थ हैं, ऐसा बार-बार विचार करनेपर चित्त परमात्मामें लग सकता है। संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंको और शरीरको नाशवान् और क्षणभंगुर समझना चाहिये। भजन-ध्यानके लिये आपने फिर जोरसे चेष्टा करनेकी बात लिखी सो बहुत आनन्दकी बात है। आप-जैसे समझदार व्यक्तिको स्त्री, पुत्र, शरीर और रुपयोंके प्रेममें फँसकर अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी वृथा नहीं गँवाना चाहिये; क्योंकि ये सब अनित्य होनेके कारण वास्तवमें तो हैं ही नहीं, यदि हैं भी तो विवेकदृष्टिसे दुःखरूप ही हैं। परमात्माकी प्राप्तिमें ये सब साधक नहीं हैं बल्कि बाधक ही हैं। किन्तु ये सब ईश्वरमें लगा देनेपर साधक भी हो सकते हैं। पर सबसे ऐसा होना सहज नहीं, स्त्री, पुत्र, धनकी तो बात ही क्या है शरीर भी अपने साथ जानेवाली वस्तु नहीं है, इस प्रकारका विचार करके जो मनुष्य इनसे प्रेम नहीं करता वही सुखी होता है। मनुष्य जब उस सच्चिदानन्दघन परमात्माके ध्यानमें मुग्ध हो जाता है तब उस समय उसे त्रिलोकीका राज्य भी तुच्छ प्रतीत होता है। किन्तु इसे जानकर भी मनुष्य इन तुच्छ भोगोंमें फँस जाते हैं, यह बड़े आश्चर्यकी बात है!

अच्छे पुरुषोंका सत्संग मिलनेपर साधन तेज हो सकनेकी बात आपने लिखी सो ठीक है। यद्यपि अच्छे पुरुषोंका सत्संग बड़े भाग्यसे मिलता है, किन्तु कोशिश करनेसे कुछ भी दुर्लभ

नहीं है। आराम और रुपयोंकी कोई परवा न हो तब तो अच्छे पुरुषोंसे बहुत दफा मिलना हो सकता है। इसके लिये आप विशेष चेष्टा क्यों नहीं करते हैं? आपको इस विषयमें विचार करना चाहिये। आप तुच्छ धनके लिये समय और धनका व्यय करके तो दूर-दूरकी यात्रा करते हैं तथा शारीरिक परिश्रम उठाते हैं, किन्तु आप विज्ञानानन्दघन परमात्माके ध्यानरूपी धनके लिये क्यों नहीं यथोचित परिश्रम करते? यह बात समझमें नहीं आती। यदि इसका हेतु मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा है तो आपको विचार करना चाहिये कि वह मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा हमारे किस काम आवेगी? यदि शरीरके परिश्रमकी कोई बात हो तो फिर शरीर है ही किसलिये? यदि अज्ञान हेतु है तो उसको विवेक-विचारके द्वारा नाश करना चाहिये, नहीं तो बहुत भारी पश्चात्तापका सामना करना पड़ेगा। यदि रुपयोंकी हानि या व्यय इसमें कारण हो तो विचार करना चाहिये, फिर वे इकट्ठे किये हुए रुपये आपके किस काम आवेंगे। यदि कुटुम्ब या व्यापार आदिकी सुव्यवस्था करनेके कारण सत्संगमें जाना नहीं होता, तब तो आपको विचार करना चाहिये कि इन सबसे बढ़कर जो आपका प्रधान कार्य है, उसकी सुव्यवस्था क्या आपको नहीं करनी है? जगह, जमीन, मुकद्दमा, मकान, कुटुम्ब आदिकी सुव्यवस्था तो आपके परलोक सिधारनेके बाद भी आपके उत्तराधिकारी कर सकते हैं, किन्तु आपके कल्याणकी व्यवस्था आपके परलोक सिधारनेके बाद आपको छोड़कर और किसीसे होनेकी नहीं है। अतएव जबतक शरीर आरोग्य है और मृत्यु दूर है इसी समय आपको जो करना है उसे अति शीघ्रतासे अपनी आत्माके कल्याणके लिये जोरोंके साथ चेष्टा कर लेनी चाहिये।

[६८]

आपके प्रेमके अनुसार मैं पत्र नहीं लिख पाता हूँ, फिर भी आप पत्र देते ही रहते हैं, यह आपकी बड़ी कृपा है। समयपर मेरे पत्र न देनेके दोषको आप दोष नहीं समझते यह आपके प्रेम और भावकी बात है। श्रीभगवान्‌के विषयको लेकर जो प्रेम है वह भगवान्‌के साथ ही प्रेम है। आपके पिताजी बीमार हैं उनकी आज्ञा बिना उन्हें छोड़कर आपका आना ठीक नहीं है। इधर मैं भी कई कारणोंसे नहीं आ सकता। इस प्रकार हमलोगोंके न मिलनेमें कुछ प्रारब्ध भी कारण समझा जा सकता है। परन्तु श्रीनारायणदेवके साथ यदि प्रेम किया जावे तो उनके मिलनेमें प्रारब्ध कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकता। आपको पहले भी लिखा गया था और फिर लिखा जाता है कि श्रीनारायणदेवके साथ पूर्ण प्रेम हो, इसी बातकी चेष्टा करनी चाहिये। संसारमें श्रीभगवान्‌के प्रेमके समान कुछ भी नहीं है। श्रीपरमात्मदेव ही प्रेमके मर्मको अच्छी तरह जानते हैं। उनके साथ प्रेम हो जानेपर उन्हें आना ही पड़ता है। कोई भी उन्हें रोकनेवाला नहीं है। श्रीनारायणदेव प्रेमके अधीन हैं। प्रेमके मर्मको जो कोई जानता है, वही प्रेममें बिक जाता है। श्रीनारायणके जो प्रेमी भक्त हैं उनसे नारायणका वियोग नहीं सहा जाता और इस कारण नारायणदेवको उनके पास आना ही पड़ता है। आपलोग जबतक श्रीभगवान्‌का वियोग सह रहे हैं तभीतक भगवान्‌का वियोग हो रहा है। जिस दिन आपलोग श्रीभगवान्‌के वियोगसे गोपियोंकी भाँति विह्वल हो जावेंगे उसी दिन भगवान्‌को आपलोगोंके पास तुरन्त ही आना पड़ेगा। यदि प्रेमके द्वारा श्रीनारायणदेवको जीतना चाहें तो और भी अधिक प्रेमकी जरूरत है। जो बड़ा प्रेमी होता है वह तो करुणासे विह्वल होकर भगवान्‌से आनेके लिये भी प्रार्थना नहीं

करता। उन भक्तोंके मनमें ऐसा भाव होता है जो प्रेमके अधीन है तथा प्रेमके मर्मको भलीभाँति जाननेवाला है वह प्रेमीके हाथ प्रेममें बिक जानेके लिये सदा तैयार रहता है। वह अपने प्रेमीके पास गये बिना एक पलक भी नहीं रह सकता। यही समझकर प्रेमी कभी भगवान्‌को बुलानेकी प्रार्थना नहीं करता; क्योंकि वह जानता है कि भगवान् अन्तर्यामी हैं और प्रेमके मर्मको समझनेवाले हैं तथा प्रेमके अधीन हैं। फिर वह किसलिये खुशामद करे? दूसरी बात वह यह सोचता है कि इतना प्रेमी होकर भी वह तुम्हारा वियोग सह रहा है, फिर तुम्हारे लिये इतना वियोग सहना कुछ भी बड़ी बात नहीं होनी चाहिये; क्योंकि तुम तो प्रेमके मर्मको उतना जानते ही नहीं। इसलिये इस विषयमें तुमको शूरवीरता रखनी चाहिये। श्रीभगवान्‌की शूरवीरताको देखकर भी तुमको शूरवीरता करनी चाहिये। तुम प्रेम करते रहोगे और प्रार्थना नहीं करोगे तो अन्तमें हारकर उनको दर्शन देना ही पड़ेगा। इस विषयमें भगवान् इतने शूरवीर नहीं हैं। यदि तुम खुशामद करोगे तो वे और ज्यादा खुशामद करावेंगे। इसलिये विशेष खुशामद करनेकी जरूरत नहीं। बल्कि उनसे उलटी खुशामद करवानी चाहिये। यदि तुम्हारा निष्कामभावसे तीव्र प्रेम होगा तो तुम उलटी खुशामद कराओगे और धक्के भी मारोगे तो भी वे आवेंगे ही।

[६९]

आपने लिखा कि जल्दीसे काम बन जाना चाहिये, सो ठीक है। निरन्तर भजन-ध्यान होनेपर जल्दीसे काम बन सकता है। यदि काम देरसे भी बने तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर भजन-ध्यानका साधन तो होते ही रहना

चाहिये। संसारमें श्रीभगवान्‌के निष्काम भजन-ध्यानके समान और कुछ है ही नहीं। ऐसा भजन-ध्यान सत्संगसे हो सकता है। उस सत्संगका रहस्य जानना चाहिये। यह जानना चाहिये कि सत्संग कहते किसे हैं? सत्संगका मर्म जान लेनेके बाद मनुष्य उसको कभी नहीं छोड़ सकता; क्योंकि सत्संगके सामने संसारमें और कोई चीज उसे अच्छी लगती ही नहीं। सत्संगी पुरुषोंके दर्शनसे भी बहुत कुछ लाभ होता है। फिर सत्संगकी तो बात ही क्या है? सत्संगद्वारा जो किसी-किसीको विशेष लाभ नहीं दिखायी देता, इसका कारण यही है कि वे सत्संगको जैसा चाहिये वैसा उत्तम नहीं समझते हैं। यदि सत्संगको सबसे उत्तम और उसका तत्त्व समझकर श्रद्धा और प्रेमके साथ सत्संग किया जाय तो सत्संग छोड़कर जाना नहीं बनता। शरीर भले ही नाश हो जाय पर जबतक शरीरमें प्राण है, तबतक सत्संगके अतिरिक्त दूसरा काम उससे किस तरह हो सकता है? क्योंकि जिन पुरुषोंको श्रीनारायणदेवके दर्शन हो चुके हैं; उन्हींके संगका नाम सत्संग है। अब विचार करनेकी बात है कि ऐसे पुरुषोंका यदि किसीको संग प्राप्त हो जाय तो फिर वह उनका संग जान-बूझकर कैसे छोड़ सकता है? भगवान्‌के साधारण भक्तोंका मिलना भी साधारण सत्संग है और उसके अनुसार ही लाभ होता है।

[७०]

आपने जो हरदम ध्यान बने रहनेका उपाय पूछा सो श्रीभगवान्‌में पूर्णप्रेम होनेसे ही हरदम उनका ध्यान बना रह सकता है; क्योंकि जिस वस्तुमें प्रेम होता है उसका अपने-आप ही बारम्बार चिन्तन होता है। श्रीनारायणदेवका भजन करनेसे

पापोंका नाश हो जाता है, भगवान्‌में प्रीति उत्पन्न होती है और जहाँ श्रीभगवान्‌में सच्चा प्रेम हुआ कि अपने-आप ही निरन्तर उनका ध्यान बना रहने लग जाता है। पूर्वजन्म तथा इस जन्मका किया हुआ पाप ही कष्टसाध्य बीमारी है। उसके नाशके लिये श्रीभगवान्‌के नामका जप ही असली ओषधि यानी बूटी है और श्रीभगवान्‌का भक्त ही सच्चा वैद्य है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और संसारके विषयभोगोंका त्याग इत्यादि और भी जो बहुत-से उत्तम आचरण हैं, वे पथ्य हैं। उपर्युक्त ओषधिका सेवन करनेसे जो रुचि पैदा होती है वह श्रद्धा है और जो प्राणोंका आधार श्रीभगवान्‌का ध्यान है, वही जीवनकी रक्षा करनेवाला अन्न है, आरोग्यतारूपी सुख है, वही अमृत है, वही अनामयपदकी प्राप्ति है। उपर्युक्त ओषधि बहुत ही तेज है, यदि पथ्य-परहेज न भी हो तो भी कोई हर्जकी बात नहीं, इस ओषधिका सेवन बराबर होते रहना चाहिये। यदि किसी समय कोई कुपथ्य हो जाय तो समयपर वैद्यसे सलाह भी लेते रहना चाहिये। फिर तो कोई भी चिन्ता नहीं है।

[७१]

आपने लिखा कि 'मैं संसारके जालमें बहुत फँस रहा हूँ' सो ठीक है। संसारके मोहको जाल समझ लेनेके बाद फिर जान-बूझकर कोई भी उसमें फँसना नहीं चाहता है। मनुष्य संसारके नाशवान् भोगोंमें अज्ञानके कारण आनन्द तथा सच्चा सुख समझता है, किन्तु जब उसे संसारके मोहजालका ज्ञान हो जाता है तब उसे संसारके सभी पदार्थ प्रत्यक्ष क्षणभंगुर दीखने लग जाते हैं तथा उस समय भूलसे संसारके पदार्थोंमें जो आनन्द भासता था, वह सब दुःखरूप भासने लग जाता है। इसकी

पहचान यह है कि जब एकमात्र सच्चे प्रेमी नारायणदेवके भजन-ध्यान तथा सत्संगके समान कुछ भी अच्छा न लगे तब समझना चाहिये कि संसारका मोह अब जालरूपसे प्रत्यक्ष दीखने लग गया है। विचार करनेकी बात है कि मोहजालको जानकर फिर कौन उसकी फाँसीमें फँसेगा? किन्तु मनुष्यमें अज्ञान भरा हुआ है इसलिये उसको मोहजाल भी सुखरूप भासता है।

अतः भजन-ध्यान एवं सत्संगका साधन खूब जोरके साथ निष्कामभावसे करना चाहिये। ऐसा होगा तो मोहजालसे छूटना कोई भी बड़ी बात नहीं है।

[७२]

आपका पत्र मिला, मानापमानको समान समझकर तथा सबको भगवान्‌का स्वरूप जानकर निष्कामभावसे सबकी सेवा करनी चाहिये। फिर भगवत्कृपासे अपने-आप ही भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। भगवद्भाव होनेपर किसीपर क्रोध भी नहीं आ सकता; क्योंकि भगवान्‌पर किसीको क्रोध नहीं आना चाहिये। यदि क्रोध आवे तो ऐसा समझना चाहिये कि वहाँ भगवद्भाव नहीं है। अपने चित्तमें कभी किसीपर उद्वेग नहीं होना चाहिये। कोई भी परिस्थिति हो, उसीमें आनन्द मानना चाहिये, क्योंकि जो कुछ भी होता है मालिककी आज्ञासे ही और मालिकके अनुकूल ही होता है। फिर यदि सब कुछ मालिकके अनुकूल ही होता है तो अपनेको भी मालिकके अनुकूल ही बनना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान्‌की बिना इच्छा कुछ भी नहीं हो सकता। उनकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। जो ऐसा समझता है वह मालिककी राजीमें राजी रहनेवाला सब समय आनन्दमें मग्न रहता है।

[७३]

आपने लिखा कि 'मेरा चित्त खराब रहता है, कुछ उपदेशकी बात लिखिये' सो उपदेशकी बात लिखनेवाला मैं कौन हूँ? कुछ शास्त्रोंकी बातें लिखी जाती हैं। यदि आपको इनसे लाभ मालूम हो तो इन्हें काममें लाना चाहिये।

आप अपने मनको प्रसन्न रखनेके लिये कोई उचित उपाय तो करते ही नहीं हैं, फिर आपका मन खराब नहीं रहेगा तो कैसा रहेगा? संसारके अन्य पदार्थ या रुपये प्रथम तो प्रारब्धसे मिलते हैं और यदि मिल भी जायँ तो वे सर्वथा क्षणभंगुर एवं नाशवान् हैं और जब संसारके सारे पदार्थ नाशवान् हैं तब उनसे आनन्द कैसे मिल सकता है? यदि एक क्षणके लिये आप उनके मिथ्या आनन्दको 'सच्चा आनन्द' मान भी लें तो भी आपको यह विचार तो करना ही चाहिये कि जिन पदार्थोंके संयोगमें जितना आनन्द है, उनके वियोगमें उससे भी बहुत अधिक दुःख होगा। संसारके पदार्थोंके साथ तो अवश्य वियोग होता ही है। उनमें आनन्द तो बिलकुल है ही नहीं, बल्कि विचार करनेसे उनमें दुःख-ही-दुःख है। लोगोंने भूलसे मूर्खतावश उनमें आनन्द मान रखा है। यही कारण है कि लोग इन पदार्थोंके मोहमें पड़कर अपना अनमोल समय बिता रहे हैं। सच्चा और एकमात्र आनन्द तो आदिपुरुष श्रीनारायणदेवके दर्शनसे ही प्राप्त होता है। श्रीपरमात्मदेवसे मिले बिना मनुष्यको सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। प्रेमके बिना श्रीभगवान् नहीं मिलते और भजन-ध्यानके साधन तथा सत्संगके बिना भगवान्में प्रेम नहीं होता है। इसलिये यदि आपको सच्चे आनन्दकी इच्छा है तो श्रीभगवान्के भक्तोंका सत्संग और भजन-ध्यानरूप भगवान्के दर्शन करानेवाले उपायमें लगना चाहिये।

[७४]

आपने मनको वशमें करनेके उपाय पूछे सो ठीक है। मनको वशमें करनेके बहुत-से उपाय हैं, उनमें कुछ लिखे जाते हैं।

(क) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहीं-वहीं श्रीपरमात्माके स्वरूपको देखना चाहिये।

(ख) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँसे उसे खींचकर श्रीभगवान्‌के ध्यानमें लगाना चाहिये।

(ग) एकतार श्वासद्वारा लम्बे स्वरसे नामका जप करना चाहिये। तार नहीं टूटने देना चाहिये।

(घ) संसारको नाशवान् और क्षणभंगुर समझकर एक नित्य सत्य चेतन आनन्दघनका ही चिन्तन करना चाहिये और सबको भूल जाना चाहिये।

(ङ) सत्-चित्-आनन्दघनमें एकीभावसे स्थित हुआ, सम्पूर्ण संसारका द्रष्टा होकर फिर इस दृश्यको भूल जाना चाहिये। तब शेषमें एक परमात्मा ही रह जाते हैं। गीता अध्याय १४ श्लोक १९ के अनुसार या गीता अध्याय ६ श्लोक २४, २५ तथा २९ के अनुसार साधन करनेसे मन बहुत जल्दी वशमें हो सकता है और भी बहुत-से उपाय हैं। भगवान्‌के प्रेममें मग्न हो जानेसे भी मनका नाश हो सकता है, अथवा वह अपने अधीन हो सकता है। उस समय भी मनमें संसारकी भी स्फुरणा नहीं होती।

आपने पूछा कि भगवान्‌में बहुत जल्दी प्रेम होनेके कौन-कौनसे उपाय हैं? सो ये हैं—

(१) निष्कामभावसे भगवान्‌के नामका निरन्तर जप और स्वरूपका ध्यान करनेकी चेष्टा करना।

(२) भगवान्‌के गुण, प्रभाव और मर्म (तत्त्व)-की कथा भगवान्‌के भक्तोंद्वारा सुनना, पढ़ना और कथन करना।

(३) भगवान्के आज्ञानुसार निष्कामभावसे सब कर्म भगवान्के लिये ही करना।

(४) मनमें भगवान्के मिलनेकी तीव्र इच्छा रखना और उनके नाम-गुणोंको सुनकर आनन्दमग्न होना। इन उपायोंका अवलम्बन करनेसे भगवान्में बहुत जल्दी प्रेम हो सकता है और भी बहुत-से उपाय हैं। प्रेम होनेसे भगवान् मिल सकते हैं और अनन्यप्रेमसे तो बहुत ही जल्दी मिल सकते हैं।

आपने लिखा कि साधनके लिये बहुत अच्छा मौका मिला है सो तो ठीक ही है। परन्तु ऐसा मानते हुए भी आप तेज साधन करनेके लिये विशेष परिश्रम क्यों नहीं करते हैं?

आपने लिखा कि यदि बीचमें मृत्यु आ जायगी तो मनकी मनमें ही रह जावेगी, सो बहुत ठीक है। यदि इस तरह सच्चा विश्वास हो तो फिर एक पल भी भूल नहीं होनी चाहिये। ऊँचे-से-ऊँचे साधनके लिये निरन्तर भजनसहित श्रीपरमात्मदेवका ध्यान करना चाहिये। ऐसा करते-करते शेषमें एक सत्-चित्-आनन्दघन ही रह जाता है। उस समय और किसीका चिन्तन नहीं रह जाता। इससे बड़ा और ऊँचा कोई दूसरा साधन मुझे मालूम नहीं है। ऐसे ध्यानके लिये पहले सब बातें लिखी जा चुकी हैं। उनका पालन करनेसे भगवान् बहुत जल्दी मिल सकते हैं। भगवान्की प्राप्तिके बाद भला शान्तिमें किस प्रकार त्रुटि रह सकती है?

श्रीसगुणभगवान्की प्राप्तिके लिये भी समयका कुछ नियम नहीं है। यदि अनन्यप्रेमसे भगवान्के ध्यानमें मग्न हो जाय तो एक ही दिनमें भगवान् मिल सकते हैं। भगवान्की ओरसे उनके मिलनेमें तो ढील है ही नहीं, साधककी ढीलसे ही भगवान्के मिलनेमें ढील हो रही है। आपने लिखा कि भगवान्के न

मिलनेसे मनमें धैर्य नहीं है, सो यह लिखना ठीक बनता नहीं है; क्योंकि जिस दिन मनमें धैर्य नहीं होगा, जिस दिन श्रीभगवान्‌के बिना नहीं रहा जायगा उस दिन तो भगवान्‌को आना ही होगा। जबतक आप भगवान्‌का वियोग सहन कर रहे हैं, तभीतक उनका वियोग हो रहा है। जिस समय आप भगवान्‌के मिले बिना एक क्षण भी नहीं ठहर सकेंगे तथा बिछोहके कारण आपका मन मछलीकी तरह तड़फड़ाने लगेगा फिर भगवान्‌की ओरसे देर हो ही नहीं सकती। भगवान्‌को प्रकट होना ही होगा। भगवान् सब जगह विराजमान हैं। कहीं दूरसे उनको आना नहीं पड़ता। उत्कण्ठा होनेपर वे सब जगह दीखने लग जाते हैं, किन्तु यह तभी होता है जब उपर्युक्त साधनोंको करनेके लिये मनुष्य कटिबद्ध हो जाता है। इन साधनोंसे ऊँचा कोई साधन है ही नहीं। आपने अपनेमें सामर्थ्यका अभाव बतलाया सो ठीक है, किन्तु भगवान्‌के शरणागत होनेसे उनकी कृपासे आप ही ऊँचे-से-ऊँचे साधन करनेकी शक्ति आ जाती है। इस बातपर विश्वास होना चाहिये। आपने लिखा कि भगवान्‌की कृपाकी स्फुरणा मुझे विशेष होती है, सो यह बड़े आनन्दकी बात है। आप भगवान्‌को पतितपावन समझते हैं, सो ठीक है, परन्तु जो पतित होता है वह तो किसीसे भी घृणा नहीं करता, चाहे कोई चमार हो, चाहे कुत्ता हो, वह अवसर मिलनेपर उनकी भी सेवा बहुत प्रेमसे करने लग जाता है। सभी जीवोंको भगवान्‌का स्वरूप समझकर सबकी निष्कामभावसे सेवा करने लगता है। उसका शरीरमें अहंभाव नहीं रह जाता। यदि कुछ भी अहंभाव रहा तो वह अपनेको सबसे नीचा कैसे समझे? और उसका पतितपावन भगवान् किस प्रकार उद्धार करें? आपने जो लिखा कि कोई ऐसा साधन होना चाहिये, जिससे भगवान् बहुत

जल्दी मिलें, यदि जल्दी न मिलें तो अन्तकालमें जरूर मिलें और यदि अन्तकालमें भी नहीं मिलें तो दूसरे जन्ममें तो जरूर ही मिलें, सो ठीक है। परन्तु आपको इतनी हिम्मत नहीं हारनी चाहिये। अन्तकालके करारपर भी नहीं रहना चाहिये, फिर दूसरे जन्मकी तो बात ही कौन है? आपको तो इसी जन्ममें बहुत जल्दी मिलनेकी कोशिश करनी चाहिये। यदि आप दूसरे जन्मके भरोसे रहेंगे तो फिर इस जन्ममें भगवान् कैसे मिल सकेंगे और भगवान्के मिले बिना धैर्य नहीं होता तथा मनको चैन नहीं पड़ती, इस प्रकारका आपका लिखना कैसे बन सकता है? आपके मनमें भगवान्के मिलनेकी उत्कण्ठा होगी तो आपको एक पल भी युगके समान लगेगा। भगवान्के लिये काम छोड़नेकी कोई जरूरत नहीं, बल्कि भगवान्में मन लगाकर काम करना चाहिये। काममें भले ही हर्ज हो जाय परन्तु श्रीभगवान्के भजन-ध्यानमें हर्ज नहीं होना चाहिये। संसारका काम छोड़नेसे भगवान् उतना प्रसन्न नहीं होते हैं जितना मुख्यवृत्तिसे भगवान्के नामका जपसहित ध्यान करते हुए गौण-वृत्तिसे संसारका काम करनेसे प्रसन्न होते हैं। इसलिये आपको चाहिये कि श्रीपरमेश्वरका ध्यान करते हुए संसारका काम करनेका अभ्यास करें। इस प्रकार यदि काममें कुछ हर्ज भी होता हो तो ध्यान नहीं छोड़ना चाहिये। भगवान्का ध्यान रखते हुए ही जितना बन सके उतना काम करना चाहिये। यदि भगवान्के ध्यानको निरन्तर बनाये रखते हुए काममें भी कोई हर्ज नहीं हो तो और भी अच्छी बात है। पहले आपको मना किया गया था कि आप मेरी बड़ाई न लिखा करें, मेरी बड़ाई करनेसे क्या लाभ होगा? फिर भी आप मेरी झूठी बड़ाई लिखते हैं, मैं ऐसी हालतमें प्रेमवश ही आपको पत्रका उत्तर लिख रहा हूँ। अब आगेसे फिर कभी ऐसा नहीं लिखना चाहिये।

आपने लिखा कि आपके आज्ञानुसार काम करनेका विचार है, ऐसा भी नहीं लिखना चाहिये। श्रीभगवान्‌के साक्षात्कार होनेका साधन लिखा गया है। उनके अनुसार यदि आप साधन करेंगे तो बहुत जल्दी भगवत्प्राप्ति हो सकती है। श्रीभगवान्‌के मिलनेके बाद तो आप-से-आप आनन्दमें निरन्तर मग्न रहनेकी स्थिति प्राप्त हो जाती है। आपने लिखा कि पहले ही इस योग्य बन जावें तब दूसरा काम करें, सो ठीक है। ऐसा समझकर ही भगवत्प्राप्तिवाले काममें आपको कटिबद्ध होकर लगना चाहिये। क्योंकि जिस कामके लिये संसारमें आना हुआ है उस कामको जरूर ही बनाना चाहिये। इस कामको मुख्यरूपसे बनाते हुए ही शरीरनिर्वाहके लिये संसारके कामोंकी चेष्टा करनी चाहिये। संसारके काममें हर्ज हो तो भले ही हो, परन्तु श्रीपरमात्माकी प्राप्तिवाले काममें कदापि हर्ज नहीं होना चाहिये।

[७५]

आपने वैराग्य, भक्ति और प्रेमकी बातोंके लिये लिखा सो बड़े आनन्दकी बात है। आपके भजन-सत्संगका साधन कैसा होता है? शास्त्रोंका अभ्यास कैसा होता है? लिखिये—

(१) संसारके सारे भोगोंको मिथ्या जानकर, केवल शरीर-निर्वाहके लिये अन्न-वस्त्र जो कुछ भी मिल जाय उसीमें निर्वाह करना चाहिये। ऐश-आराम, स्वाद-शौकीनी आदि इन्द्रियोंके सारे भोगोंको विषवत् त्याग देना चाहिये। संसारके सारे भोग मिथ्या हैं। यदि मिथ्या न दीखें तो क्षणभंगुर और अन्तमें दुःख देनेवाले तो हैं ही। ऐसा समझकर भोगोंसे उपराम होना चाहिये। ये विषय-भोग कल्याण-मार्गमें बहुत ही हानि पहुँचानेवाले हैं, ऐसा मानकर इन्हें मनसे छोड़ देना चाहिये।

(२) श्रीपरमेश्वरमें ऐसा प्रेम करना चाहिये, जिससे चित्तसे कभी भी उनके स्वरूपका ध्यान न छूटे। जिस प्रकार कामीको स्त्रीमें, लोभीको रुपयोंमें प्रेम होता है, उसी प्रकार हमारा परमेश्वरमें प्रेम होना चाहिये। एकमात्र परमेश्वर ही प्रेम करने लायक हैं। भगवान् भजन करनेवालेके पाप, अवगुण और जाति नहीं देखते, केवल प्रेम ही देखते हैं। वे सबके साथ समानभावसे बर्ताव करते हैं ऐसा जानकर उन भगवान्‌को कभी नहीं भूलना चाहिये। जो भगवान्‌के मर्मको जान लेता है, उसका भजन-ध्यान कभी नहीं छूट सकता। उसको भगवान्‌के नामका जप और उनके स्वरूपके ध्यानके समान और कुछ भी दिखायी नहीं देता है।

भगवान्‌के नामका जप, स्वरूपका चिन्तन, उनके गुणानुवादका कीर्तन तथा भगवान्‌की मानसिक पूजा, नमस्कार और उनके चरणोंकी सेवा, एवं भगवान्‌को मालिक, प्रेमी, परम सखा समझकर प्रेमसहित सब कुछ समर्पण कर देना ही उनकी उत्तम भक्ति है।

[७६]

भाई! आप कई बार बीमार पड़े, बहुत तकलीफ पा चुके फिर भी आपको चेत नहीं होता। तब क्या लिखा जाय, यदि शरीरपात हो जाय तो फिर भगवान्‌के बिना और कौन है? यदि भगवान्‌में प्रेम-श्रद्धा-भक्ति नहीं हुई तो बहुत ही मुश्किल है। ऐसा विचारकर श्रीनारायणदेवमें शीघ्र प्रेम करना चाहिये। संसारमें तथा शरीर और संसारके भोगोंमें आपका इतना प्रेम क्यों है? यह कुछ भी समझमें नहीं आता।

इस असार संसारके नाशवान् तथा क्षणभंगुर भोगोंमें आप किसलिये फँस रहे हैं? शरीर भी आपके साथ नहीं जायगा, तब भोग कैसे जा सकते हैं? स्त्री-पुत्र तो कभी साथमें जा ही नहीं

सकते। आजतक वे किसीके साथ गये भी नहीं। जिन पुरुषोंका इन विषय-भोगोंमें प्रेम होता है, उनकी अन्तमें इनमें वासना रह जाती है, इस कारण संसारमें उनका जन्म होता है। परन्तु जो श्रीपरमात्मदेवका चिन्तन करते हुए मरते हैं वे उन्हींको प्राप्त होते हैं। ऐसा शास्त्रका नियम है और श्रीभगवान्‌की आज्ञा है। इस बातपर जिनका पूरा विश्वास हो जाता है वे फिर एक पल भी भगवान्‌को कैसे भूल सकते हैं? ऐसा जिनका विश्वास है उनको धन्यवाद है। आपका संग होते कितने दिन हो गये आपको विचार करना चाहिये। यदि आरम्भसे ही आप लगातार साधन करते तो आपका अबतक बहुत ऊँचा दर्जा हो गया होता। आजतक आपने क्या साधन किया? इसी तरह आगे भी करते रहेंगे तो आपके लिये ठीक नहीं है, इसलिये अब तो आपको चेतना ही चाहिये। यद्यपि आपको सत्संगका भरोसा है तथापि सत्संगका यह सिद्धान्त नहीं मानना चाहिये कि भजन, ध्यान भले ही न हों परन्तु उद्धार अपने-आप हो ही जायगा। सत्संगसे तो साधन और भी तेज होना चाहिये। सत्संगके भरोसे यदि साधन ढीला हो जाय तो समझना चाहिये कि सत्संगका उद्देश्य ही समझमें नहीं आया। जिस सत्संगके प्रतापसे संसारसे उद्धार पानेका विश्वास हो, उसके लिये कितनी चेष्टा होनी चाहिये, उसकी बातका कितना आदर करना चाहिये? सत्संगसे केवल उद्धारमात्र मान लें, परन्तु उसकी थोड़ी बातोंकी भी इज्जत नहीं की जाय तो समझना चाहिये कि कथनमात्रसे ही सत्संगको उत्तम माना है। असलमें यह मनका धोखा है। आपको इस बातपर विचार करना चाहिये कि यदि आप सत्संगका प्रभाव अच्छी तरह जान जाते तो फिर एक पलके लिये भी आपसे सत्संग छोड़ा नहीं जा सकता।

सत्संगके कारण यदि संत-महात्माओंके लक्षण आपमें आ गये होते, तो फिर चाहे कैसा भी फौजदारीका मामला क्यों न हो आपको घबराहट बिलकुल नहीं होती। इस तुच्छ मामलेकी तो बात ही कौन है। यमराजवाले मामलेकी भी बिलकुल चिन्ता नहीं होती! इन सब बातोंपर विचार करके, आलस्य और आसक्तिको त्यागकर आपको श्रीनारायणके प्रेममें लगना चाहिये। शरीरकी और नाशवान् भोगोंकी परवा छोड़कर एक भगवान्से मिलनेकी ही उत्कण्ठा होनी चाहिये।

[७७]

ईश्वरविषयक आपके तीनों प्रश्न बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। इनका उत्तर लिखनेमें मैं अपनेको अयोग्य और असमर्थ ही पाता हूँ। फिर भी आपके प्रेमके लिये अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार यत्किंचित् लिखनेका साहस कर रहा हूँ।

आपका प्रश्न है कि माता, पिता, स्त्री, पुत्रकी भाँति साकार ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शन किस प्रकार हो सकते हैं?

इस प्रश्नका साधारण विवेचन गीताप्रेससे प्रकाशित 'कल्याण-प्राप्तिके उपाय' नामक पुस्तकमें किया गया है। आप उस पुस्तकमें देख सकते हैं। इसके सिवा अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ लिख भी रहा हूँ।

विशुद्ध प्रेम ही ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शनका प्रधान उपाय है। यह प्रेम किस प्रकार होता है, इसका विवेचन करना चाहिये। सबसे प्रथम यह विश्वास होना आवश्यक है कि ईश्वर है और वह सुहृद्, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, परमदयालु, प्रेममय, सर्वज्ञ, आनन्ददाता है एवं साक्षात् सर्वत्र विराजमान है। जबतक इस प्रकारका विश्वास नहीं होता तबतक मनुष्य परमात्मासे मिलनेका

अधिकारी ही नहीं है। पवित्र अन्तःकरण होनेसे ही मनुष्य अधिकारी हो सकता है। निष्कामभावसे किये हुए भजन-ध्यान, सेवा-सत्संग मनुष्यके हृदयको पवित्र करते हैं और पवित्र हृदय होनेपर ही मनुष्य अधिकारी भी बनता है। ईश्वरका ज्ञान भी उसके अधिकारी बननेके साथ-ही-साथ बढ़ता रहता है। इस प्रकार जब मनुष्यको ईश्वरका भली प्रकार ज्ञान हो जाता है यानी ईश्वरको वह भलीभाँति तत्त्वसे जान लेता है तब ईश्वरसे वह जिस रूपमें मिलना चाहता है भगवान् उसी रूपमें उसे दर्शन देते हैं। वे सर्वव्यापी परमात्मा सच्चिदानन्दरूपसे तो सर्वदा वर्तमान हैं ही पर भगवान्‌के रहस्यका ज्ञाता भगवद्‌भक्त जिस सगुण-साकार चिन्मय मूर्तिसे मिलनेकी इच्छा करता है उसी मोहिनी मूर्तिमें वह नटवर अपने प्रेमी भक्तसे मिलता एवं बातें करता है। इसमें प्रधान कारण प्रेम और पूर्ण विश्वास है जिसको विशुद्ध श्रद्धा भी कहा जाता है। इसकी भगवान्‌ने गीतामें स्थान-स्थानपर प्रशंसा की है।

योगिनामपि सर्वेषां मद्‌गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(६।४७)

हे अर्जुन! सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मेरेमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(गीता १२।२)

हे अर्जुन! मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रद्धासे युक्त हुए मुझ

सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं वे मुझको योगियोंमें भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात् उनको मैं अतिश्रेष्ठ मानता हूँ। वे सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन प्रभु सगुण-साकाररूपसे किस प्रकार प्रकट होते हैं? इस रहस्यको यथार्थतासे भगवान्‌का परम श्रद्धालु अनन्यप्रेमी पूर्ण भक्त ही जानता है; क्योंकि यह इतना गम्भीर और रहस्यपूर्ण विषय है कि अन्तःकरणकी पवित्रताके बिना साधारण मनुष्योंकी बुद्धिमें आना सम्भव नहीं। पर जो परमेश्वरका नित्य-निरन्तर स्मरण करते हैं उनके लिये भगवान्‌का यह रहस्य समझना पूर्णतया सहज है।

यद्यपि साधु-महात्मा और शास्त्रने इस तत्त्वको समझानेके लिये बहुत प्रयत्न किये हैं, पर करोड़ोंमें कोई एक बिरला ही पुरुष इस तत्त्वको समझ पाता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

(२।२९)

हे अर्जुन! यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है, इसलिये कोई महापुरुष ही इस आत्माको आश्चर्यकी ज्यों देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही आश्चर्यकी ज्यों इसके तत्त्वको कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्माको आश्चर्यकी ज्यों सुनता है और कोई-कोई सुनकर भी इस आत्माको नहीं जानता।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७।३)

परन्तु हजारों मनुष्योंमें कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्तिके लिये

यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मुझको तत्त्वसे जानता है अर्थात् यथार्थ मर्मसे जानता है। जिस प्रकार चुम्बक लोहेको आकर्षित करता है, फोनोग्राफकी चूड़ी और रेडियो शब्दको आकर्षित करते हैं एवं कैमरेका प्लेट जैसे आकारको खींचता है उसी प्रकार उस भगवान्‌का प्रेमी भक्त अपने अनन्यप्रेमसे भगवान्‌को आकर्षित कर लेता है। कोई देश, कोई वस्तु, कोई काल उससे खाली नहीं, वह सर्वत्र परिपूर्णरूपसे सर्वदा अवस्थित है। प्रेमी भक्त उसको जिस मूर्तिमें, जिस रूपमें और जिस समय प्रकट करना चाहता है वह लीला-निकेतन नटवर उस प्रेमीके अनन्यप्रेमसे आकर्षित होकर उसी मूर्ति और उसी रूपमें और उसी समय साक्षात् प्रकट हो जाता है।

ये जितने प्रकारके उदाहरण मैंने ऊपर दिये हैं जडपदार्थ-विषयक होनेके कारण कोई भी उस चेतनरूप परमात्मामें पूर्णरूपसे नहीं घट सकते। क्योंकि परमात्माके सदृश कोई वस्तु है ही नहीं जिसका उदाहरण देकर परमेश्वरके विषयको समझाया जा सके।

संसारमें सभी मनुष्य सुख चाहते हैं, सुखसे या जिससे सुख मिलनेकी आशा रहती है उससे प्रेम करते हैं। इसलिये जो पुरुष भगवान्‌को सुखस्वरूप और सुखप्रद समझ लेता है, उससे बढ़कर या उसके समान आनन्दप्रद एवं आनन्दस्वरूप किसी वस्तुको नहीं समझता एवं इस बातपर जिसको पूर्ण विश्वास हो जाता है वह पुरुष ईश्वरको छोड़कर और किसीसे प्रेम नहीं कर सकता। समस्त संसारमें जहाँ भी सुख और आनन्द प्रतीत होता है, वह उस आनन्दमय परमात्माके आनन्दका आभासमात्र ही है। परन्तु वह क्षणिक, अल्प और अनित्य है। परमेश्वर नित्य, पूर्ण, चेतन

और आनन्दघन है। इसलिये उस नित्य-विज्ञान-आनन्दघन परमात्माके साथ किसी सांसारिक आनन्दकी तुलना नहीं की जा सकती। भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग आदिसे पवित्र अन्तःकरण होनेके साथ-ही-साथ उपर्युक्त प्रकारके ज्ञानरूपी सूर्यका प्रकाश मनुष्यके हृदयाकाशमें चमकने लगता है। बतलाइये! जो इस प्रकार उस परमानन्दके वास्तविक तत्त्वको समझ लेता है वह कैसे इस सांसारिक तुच्छ विषयजन्य नाशवान् अनित्य सुखमें फँस सकता है?

अतएव मनुष्यको परमेश्वरमें अनन्यप्रेम होनेके लिये भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग, सदाचार आदिकी पूर्ण चेष्टा करनी चाहिये।

आपका दूसरा प्रश्न है कि ईश्वरमें तर्करहित श्रद्धा किस अभ्याससे हो सकती है?

उस परम प्यारेकी मनमोहिनी मूर्तिका साक्षात् दर्शन करनेवाले एवं उसके तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले पुरुषोंद्वारा ईश्वरके गुण, प्रेम और प्रभावकी बातोंको प्रेमसे सुनने एवं समझनेसे ईश्वरमें तर्करहित विशुद्ध श्रद्धा उत्पन्न हो सकती है।

यदि ऐसे महात्माओंसे मिलना न हो तो प्रेम और श्रद्धासे परमेश्वरकी प्राप्तिका प्रयत्न करनेवाले साधक पुरुषोंका सत्संग करना चाहिये एवं उनसे ईश्वरविषयक गुण, प्रेम और प्रभावकी चर्चा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे भी भगवान्‌में श्रद्धा और भक्ति बढ़ती है। यदि इस प्रकारके उच्च श्रेणीके साधकका संग भी न मिले तो मनुष्यको जिनमें ईश्वरके प्रेम, प्रभाव, गुण और तत्त्वकी बातें लिखी हों एवं जो ईश्वर या महापुरुषोंद्वारा रचे हुए हों ऐसे शास्त्रोंका विचारपूर्वक प्रेमसे अध्ययन करना चाहिये। सम्पूर्ण शास्त्रोंमें ईश्वरतत्त्वके ज्ञानके लिये श्रीमद्भगवद्गीताके समान दूसरी पुस्तक नहीं है। महाभारतमें लिखा है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीता सुगीता करनेयोग्य है अर्थात् श्रीगीताजीको भली प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्तःकरणमें धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं श्रीपद्मनाभ विष्णुभगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली हुई है, फिर अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है?

गीताके अध्ययनसे भी ईश्वरमें पूर्ण श्रद्धा हो सकती है। यदि इन ग्रन्थोंके समझनेकी बुद्धि भी न हो तो उन परम पिता परमात्मासे नित्यप्रति एकान्तमें सच्चे हृदयसे विनयभावपूर्वक गद्‌गद होकर प्रेमसहित विशुद्ध श्रद्धा होनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। उस दयासागरके सामने की हुई सच्चे हृदयकी प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं होती। इस अभ्याससे परमात्मामें तर्करहित पूर्ण श्रद्धा हो सकती है।

बिना श्रद्धाके ईश्वरतत्त्वका ज्ञान हो ही नहीं सकता वरं उत्तरोत्तर उसका पतन ही सम्भव है। जैसे गीतामें लिखा है—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

(९।३)

हे परंतप! इस तत्त्वज्ञानरूप धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते हैं।

अतः ईश्वरतत्त्वके जाननेके लिये श्रद्धाकी परम आवश्यकता है; क्योंकि श्रद्धासे ईश्वरके तत्त्वका ज्ञान होकर परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। गीतामें लिखा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(४।३९)

हे अर्जुन! जितेन्द्रिय तत्पर हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है, ज्ञानको प्राप्त होकर वह तत्क्षण भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

इसलिये ईश्वरमें अनन्य श्रद्धा होनेके लिये कटिबद्ध चित्तसे प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

उपर्युक्त चार साधनोंमेंसे किसी एकका या अधिकका जो जितना अभ्यास करेगा उसकी उतनी ही श्रद्धा बढ़ेगी एवं उस परमपिता परमेश्वरमें उतना ही अधिक प्रेम होगा। सभी साधनोंका पालन करनेसे शीघ्र ही ईश्वरमें तर्करहित श्रद्धा हो सकती है एवं आदर और प्रेमसे किया हुआ अभ्यास अन्तःकरणको पवित्र करके बहुत श्रद्धा बढ़ा देता है।

आपका तीसरा प्रश्न है—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

ऐसी सच्ची भावना कैसे हो?

उपर्युक्त साधनोंका प्रेम और आदरसे जितना अधिक अभ्यास किया जाता है उतना ही शीघ्र मनुष्यका हृदय पवित्र हो जाता है। हृदय पवित्र होनेके साथ-ही-साथ परमेश्वरमें श्रद्धा बढ़ती है। श्रद्धाकी वृद्धिसे परमेश्वरमें सर्वदा दृढ़ भावना बढ़ती है। भावनाके दृढ़ होनेसे सर्वत्र ईश्वरका प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता है। उस समय वह सर्वव्यापी परमेश्वर सीयराममय देखनेवालोंको सीयराममय एवं केवल राममय देखनेवालेको राममय दिखलायी पड़ने लगता है।

[७८]

श्रीभगवान्‌की भक्ति करनेसे ज्ञान आप ही हो सकता है। वैराग्य चित्त शुद्ध होनेपर होता है। वह भी भगवान्‌की भक्ति करनेसे चित्त शुद्ध होकर हो जाता है। यों भक्तिसे ज्ञान-वैराग्य आप ही हो सकते हैं। भागवतमें लिखा है भक्ति माता है और ज्ञान-वैराग्य दोनों भक्तिके पुत्र हैं। भक्ति सदा जवान रहती है और ज्ञान-वैराग्य वृद्ध हो गये। अतएव श्रीभगवान्‌की भक्तिके लिये विशेष कोशिश करनी चाहिये। श्रीभगवान्‌की भक्ति और शरण एक ही वस्तु है। शरणका साधारण स्वरूप यह है—

(१) श्रीभगवान्‌के अनुकूल होना और उनकी इच्छाके अनुसार चलना।

(२) श्रीभगवान्‌के नाम, रूप और गुणोंको हर समय याद रखना।

(३) जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त हो उसमें आनन्द मानना। उसमें भगवान्‌की दया समझना और उनका किया हुआ विधान समझकर प्रसन्न रहना। मन मलिन न करना।

(४) अपने कल्याणके लिये श्रीभगवान्‌पर ही निर्भर रहना। कुछ भी चिन्ता नहीं करना। श्रीभगवान्‌पर पूरा विश्वास रखना और अपनेको उनके चरणोंकी शरणमें समझना।

निर्भयता, धीरता, गम्भीरता, सन्तोष, शान्ति और प्रसन्नता आदि गुण शरणापन्न पुरुषमें स्वाभाविक आ जाते हैं।

बन सके तो दोनों समय ठीक समयसे सन्ध्या, दो या तीन माला रोज गायत्रीजाप, कम-से-कम एक अध्याय गीताका अर्थसहित पाठ, सात या चौदह माला सोलह नामवाले, 'हरे राम' मन्त्रका जाप और 'प्रेमभक्ति' के अनुसार नित्यप्रति भगवान्‌की पूजा, ध्यान, स्तुति ये सब आपको नित्य-नियमपूर्वक करने चाहिये।

भोजन-वस्त्रका संयम, व्यापारमें सत्य भाषण, लोभ-कपटका त्याग, सबके साथ स्वार्थ छोड़कर विनयपूर्वक प्रेमभरा सद्-बर्ताव करनेकी चेष्टा रखनी चाहिये।

सदाचार, संयम, सेवा और साधन—ये चार सकार धारण करनेसे मुक्तिमें कुछ भी शंका नहीं है। बहुत जल्दी कल्याण हो सकता है।

इन्द्रियों और मनको विषयोंसे रोकनेको संयम, दुःखी जीवोंको हर प्रकारसे मदद करनेको सेवा, सत्पुरुषोंद्वारा आचरित और कहे हुए मार्गको सदाचार और भजन, ध्यान, सत्संग, शास्त्रके अभ्यास आदिको साधन समझना चाहिये। इन्हींका विस्तार चाहे जितना कर सकते हैं। सूत्ररूपसे बातें लिखी गयी हैं। ये अमृत हैं, इनको काममें लानेसे मुक्ति सहजमें ही हो जाती है। ये बातें लोगोंको भलीभाँति समझाने और स्वयं अच्छी तरह काममें लानेकी हैं। इनसे बढ़कर कुछ भी नहीं है। इनसे अपार सन्तोष, शान्ति और आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है।

भगवान्‌की यादमें भूल ज्यादा पड़े तो उसका उपाय तीव्र अभ्यासकी चेष्टा करना ही है और भगवान्‌में प्रेम बढ़नेका उपाय पूछा सो आपको पहले लिखा ही था। भगवान्‌के गुणानुवाद पढ़ने, सुनने और कहनेसे एवं उसके गुण, आशय और प्रभावकी तरफ खयाल करनेसे भगवान्‌में प्रेम बढ़ सकता है। तथा भगवान्‌का भजन, ध्यान और सत्पुरुषोंका संग करनेसे भगवान्‌में प्रेम बढ़ सकता है।

भजन और सत्संग ज्यादा होनेमें तीव्र इच्छाकी जरूरत है। जिस वस्तुकी तीव्र इच्छा होती है उसके लिये प्रयत्न और चेष्टा भी बहुत अधिक होती है। जिसे रुपयोंकी

जरूरत होती है वह रुपये पैदा करनेके वक्त उन्हींका चिन्तन और उन्हींके लिये तन-मनसे चेष्टा करता है। उसके मनमें प्रायः हर समय यही चिन्ता रहती है कि रुपया किस प्रकारसे पैदा हो। रुपया कमानेके विचारमें वह अपने मन-बुद्धिको अर्पण कर देता है। इसी प्रकार जिनको भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा होती है उन्हें अपने मन-बुद्धिको भगवान्‌में अर्पण करना पड़ता है तथा भजन, ध्यान और सत्संग जो भगवान्‌के मिलनेके उपाय हैं उनके लिये तीव्र इच्छा हो जाती है। तीव्र इच्छा होनेपर उनके लिये उपाय तथा चेष्टा भी तीव्र होती है। कोई आदमी ज्यादा बीमार होता है और वैद्य कहता है कि अमुक वस्तुके आनेसे बच सकता है, उस समय उस वस्तुके लिये जितनी अधिक चेष्टा होती है वैसी ही चेष्टा भजन, ध्यान और सत्संगके लिये होनी चाहिये। तीव्र इच्छा होनेसे ही तीव्र चेष्टा होती है और तीव्र चेष्टा होनेसे वस्तुकी प्राप्ति होती है। मिथ्या सांसारिक वस्तु तो चेष्टा करनेपर भी शायद न मिले और मिलनेपर रोगीको उससे आराम भी हो या न हो, परन्तु भजन-सत्संगके लिये चेष्टा करनेसे चेष्टा जरूर सफल होती है और भजन-सत्संगरूपी ओषधिके श्रद्धापूर्वक दीर्घकालतक सेवन करनेसे भगवान्‌में प्रेम होकर जन्म-मरणरूपी बीमारीका जरूर नाश हो जाता है। सत्यकी चेष्टा कभी व्यर्थ नहीं जाती।

जपमें भूल होनेकी बात लिखी सो जपके अधिक अभ्यास करनेसे जपकी भूल दूर हो सकती है। बिना प्रेमके भी प्रसन्नमनसे जप करनेका अभ्यास डालनेसे आगे चलकर प्रेमसहित जप हो सकता और जिस समय जप निरन्तर होता है उस समय प्रेमसहित ही होता है। वैराग्य होनेसे तो जप-

ध्यान बिना ही चेष्टाके निरन्तर होता है और भजन, ध्यान, सत्संगसे ही वैराग्य होता है। 'भगवान्‌की स्मृति हर समय बनी रहनी चाहिये' ऐसी तीव्र इच्छा ही निरन्तर भगवच्चिन्तन होनेमें हेतु है। जप करते समय संसारकी स्फुरणा हो तो उसकी जगह जबरदस्ती भगवत्-विषयकी स्फुरणा करनेका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा अभ्यास करनेसे जपके साथ ध्यानकी वृद्धि और संसारकी वासनाका भी क्षय हो सकता है। यदि सत्ता और आसक्तिरहित स्फुरणा हो तो कुछ हर्ज नहीं। सांसारिक सत्ता और आसक्तिके नाश होनेके लिये जप और सत्संगके तीव्र अभ्यासकी जरूरत है। भगवान्‌के नामकी याद हर वक्त बनी रहनी चाहिये, फिर अधिक अभ्यास होनेसे संसारमें वैराग्य तथा भगवान्‌के स्वरूपमें स्थिति भी हो सकती है।

श्रीपरमात्मदेवकी तो सदा-सर्वदा सभीके ऊपर कृपा है, जिसे ऐसा निश्चय हो जाता है वही भगवान्‌की कृपाका पात्र है। उसे फिर भगवान् शीघ्र ही मिल जाते हैं; क्योंकि बिना मिले उनको चैन नहीं पड़ती है। संसार और शरीरको मिथ्या नाशवान् देखनेसे और सर्वव्यापी परमात्माको नित्य आनन्दस्वरूप देखनेसे भी वैराग्य हो सकता है। परमात्माके स्वरूपका चिन्तन, नामका जप और सत्संग ही प्रेम होनेका मुख्य उपाय है। जो आदमी भगवान्‌को सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, दयासिन्धु तथा बिना ही कारण हित करनेवाला जानेगा वह तो कभी किसी भी बातके लिये भगवान्‌से प्रार्थना नहीं करेगा। यदि प्रार्थना करेगा तो 'प्रेमभावसहित निरन्तर चिन्तन होता रहे' इसी बातके लिये करेगा। हर समय नामके स्मरणका अभ्यास हो जानेसे फिर बहुत समयतक ध्यानकी स्थिति भी रह सकती

है। भगवान्‌को याद रखते हुए ही सांसारिक काम हो ऐसी चेष्टा रखनी चाहिये। संसारके कामोंसे भजन-ध्यानको बहुत ही उत्तम और अमूल्य समझना चाहिये। संसारके काममें चाहे जितना हर्ज हो पर कामकी नुकसानीके लिये भजन-ध्यानको नहीं छोड़ना चाहिये। इस प्रकार पक्की धारणा होनेसे संसारके कामोंको करते हुए भी भजन-ध्यान हो सकते हैं। संसारके काम मानो नदीका प्रवाह है। जो पुरुष ध्यानके द्वारा भगवच्चरणरूपी नौकाका आश्रय ग्रहण कर लेता है तथा भगवन्नामरूपी नौकाके रस्सेको पकड़ लेता है वह बच जाता है और जो नदीके प्रवाहमें बह जाता है उसकी बहुत बुरी दशा होती है।

× × × ×

भजन-सत्संग ज्यादा होनेसे अन्तःकरण शुद्ध होगा, फिर धारणा होनेमें देर नहीं होगी। फिर संसारकी कामना नहीं रह सकती, सो आपकी चेष्टा है ही फिर भी इसके लिये और अधिक चेष्टा करनी चाहिये। इस काममें अभ्यास ही प्रधान है। दिन बीते जा रहे हैं। अपने मनमें विचारना चाहिये कि मैंने इस संसारमें आकर क्या किया 'और क्या करना चाहिये।' इसी तरह यदि और भी समय बीतेगा तो फिर कैसे जल्दी कामयाबी होगी। समयको अमूल्य काममें बिताना चाहिये। फिर संसार, रुपये तथा ये भोग किस काम आवेंगे। वस्तु तो वही है जो भगवान्‌में अधिक प्रेम करावे। उसके सिवा बाकी सब मिथ्या है। सोने और पत्थरके पहाड़ोंमें क्या फर्क है। कोई भी साथ जानेवाला नहीं है। शरीर भी मिट्टीमें मिलनेवाला है ऐसा जानकर इस शरीरसे पूर्ण लाभ उठाना चाहिये। भगवान्‌के भजन-ध्यान बिना एक पल भी व्यर्थ

नहीं जाने देना चाहिये। क्योंकि भगवान्‌के सिवा सभी कुछ अनित्य और असत् है, अनित्य और असत्‌के लिये अपना अमूल्य जीवन हाथसे कभी नहीं गँवाना चाहिये।

---

[७९]

सविनय प्रणाम!

आपका पत्र मिला। आप जो कभी-कभी प्रश्न लिख भेजते हैं, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। इसमें कष्ट मानने या नाराज होनेकी क्या बात है। बल्कि यह तो आपकी कृपा है जो आप मुझसे पूछते हैं; क्योंकि इसी बहाने मुझे भी भगवत्-चर्चाका लाभ प्राप्त हो जाता है।

वेतन कम होनेके कारण आपके घरका खर्च संकोचके साथ चलता है और ऋण चुकानेमें पैसा बिलकुल ही नहीं दिया जाता, अवश्य ही यह विचारणीय प्रश्न है। मेरी समझमें ऋण-मुक्तिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करनेमें कोई दोष नहीं है। बल्कि किसी मनुष्य और देवतासे प्रार्थना करनेकी अपेक्षा भगवान्‌से प्रार्थना करना उत्तम है। किन्तु इस ऋणसे भी बढ़कर एक ऋण और हमारे सिरपर है, जिसके कारण हमें जन्म-मृत्युके फेरमें पड़ा रहना पड़ता है और उस एक ऋणके अन्दर ही अन्य सब ऋण शामिल हैं तथा उसी एकके चुक जानेपर अन्य सब ऋण चुक जाते हैं। अतएव मेरी समझमें यदि ऋण-मुक्तिके लिये प्रार्थना करनी ही हो तो इस सांसारिक ऋणकी अपेक्षा उसी महान् ऋणके लिये प्रार्थना करना सबसे उत्तम है। जब उस ऋणसे मुक्ति मिल जायगी तब अन्य समस्त ऋणोंकी चिन्ता आप-से-आप दूर हो जायगी।

इससे भी एक और उच्च भावना है, जिसे लोग सहसा नहीं

समझ पाते और इसी कारण उसका अधिक विस्तार मैं नहीं कर रहा हूँ। वह यह है कि जन्म-मरणरूपी ऋणसे भी मुक्ति पानेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना नहीं करनी चाहिये—जन्म-मरणसे छुटकारा पानेके लिये भी भगवान्‌से प्रार्थना करना निष्काम कर्म नहीं है। वास्तवमें सबसे उत्तम तो यही है कि हम केवल भगवान्‌की भक्ति करते रहें और उनकी आज्ञाओंका पालन करते रहें। इसीको निष्काम कर्म कहा गया है, किन्तु ऐसा सहसा सबसे नहीं होता—हम किस उद्देश्यसे ऐसा करें यही समझमें नहीं आता। इसीसे एक महान् उद्देश्य—जन्म-मृत्युसे छुटकारा पानेका उद्देश्य सामने रखकर भगवान्‌की उपासना करके उनसे इसके लिये प्रार्थना करनेकी बात कही गयी है और इस उद्देश्यको सामने रखकर प्रार्थना करनेमें कोई बुराई नहीं है।

हाँ, यह प्रश्न अभी रह ही जाता है कि इस लौकिक ऋणके लिये क्या किया जाय, इसे कैसे चुकाया जाय? इसके लिये भरसक न्याययुक्त तरीकेसे धन पैदा करके और अपने निर्वाहके लिये कम-से-कम खर्चकर जो बचे उससे चुकानेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि हो सके तो अपने पास जो कुछ सम्पत्ति हो, जगह-जमीन, घर-द्वार, गहना-कपड़ा, उसे देकर पावनेदारको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। फिर भी यदि ऋण न अदा हो तो शान्ति और धैर्यके साथ तज्जन्य कष्टोंको सहन करना चाहिये। किन्तु प्रार्थना तो निरन्तर उस बड़े ऋणसे मुक्ति पानेके लिये ही करनी चाहिये। यह ऋण तो परिश्रम करके कुछ दिनोंमें चुक सकता है; घर-द्वार, धन-सम्पत्ति बेच देनेसे भी पट सकता है; किन्तु वह ऋण अन्य किसी उपायसे नहीं चुक सकता, वह तो भगवान्‌की कृपापर ही निर्भर करता है और वह कृपा आर्त प्रार्थनाद्वारा प्राप्त हो सकती है।

आपने ब्राह्मणोंके लिये गायत्रीका जप करना उत्तम बताया सो ठीक ही है। आपने जो अपने लिये निष्कामभावसे गायत्री जपना अच्छा लिखा, सो उसके अनुसार आपको अवश्य ही गायत्रीका जप निष्कामभावसे करनेकी कोशिश करनी चाहिये। आप ईश्वरके सिवा दूसरे किसीको अपना आश्रय नहीं समझते, यह भी उचित ही है। वास्तवमें भगवान्‌के सिवा मनुष्यका दूसरा कोई आश्रय नहीं है। उन्हींपर पूर्ण विश्वास रखकर उनका भजन-पूजन करते रहना चाहिये।

गीतामें भगवान्‌ने अपने धर्मका पालन करते हुए मर जानेको भी कल्याणकारक बतलाया है, वह ठीक ही है। निष्कामभावसे अपना धर्म पालन करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। अतएव जो मनुष्य निष्कामभावसे अपने धर्मका पालन करता है वह अवश्य ही निःश्रेयसको प्राप्त करता है।

गीताके १८ वें अध्यायके ४२ वें श्लोकमें शम, दम, तप इत्यादि ब्राह्मणके कर्म बतलाये गये हैं। ये गुण तो ब्राह्मणोंमें स्वभावसिद्ध होने ही चाहिये। इनके अलावा आजीविका आदिके सम्बन्धमें, जिसका गीतामें जिक्र नहीं है, मनु आदि महर्षियोंने जो कुछ बतलाया है उसे करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ब्राह्मणोंके लिये मनुमहाराजने छः कर्म बतलाये हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

'विद्या पढ़ना, विद्या पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना—ये छः कर्म ब्राह्मणोंके हैं।' इनमें विद्या पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना, ये आत्माके उद्धारके लिये सामान्य धर्म हैं। शेष तीन—विद्या पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना—ये कर्म जीविकासे सम्बन्ध रखते हैं। इन

तीनोंमें विद्या पढ़ाकर और यज्ञ कराकर धन लेनेकी अपेक्षा याचना करना निन्द्य समझा गया है। किन्तु जो दान अपने-आप बिना माँगे प्राप्त हो और लेनेवाला केवल अपनी आवश्यकताके अनुसार ले तो वह दान अमृतके समान है। शिलोञ्छवृत्ति इन सबसे भी उत्तम है। किन्तु आजकल उसकी परिपाटी नष्ट हो गयी है। उन वृत्तियोंमें रहना असम्भव-सा है। अतएव यज्ञ कराकर, विद्या पढ़ाकर और बिना याचना किये यजमानकी दी हुई दक्षिणाके रूपमें धन लेकर जीविका चलाना ब्राह्मणके लिये सबसे उत्तम है। यदि ऐसा न हो सके तो बिना माँगे आवश्यकतानुसार दान ग्रहण करना भी आपके लिये उत्तम है।

आजकल घोर कलिकाल पृथ्वीपर विराज रहा है। ऐसे संकटकालमें सम्भव है, इन ब्राह्मणोचित कार्योंके द्वारा निर्वाह न हो सके। अतएव मनु आदि ऋषि-महर्षियोंने आपत्तिकालका भी धर्म बताया है। उसको ग्रहण करनेमें भी कोई आपत्ति नहीं। शास्त्रोंमें बतलाया गया है कि यदि ब्राह्मणका कार्य ब्राह्मणवृत्तिसे न चले तो वह क्षात्रवृत्ति या वैश्यवृत्तिका अवलम्बन कर सकता है। देशकी जो वर्तमान स्थिति है, उसमें क्षात्रवृत्तिका भी पालन करना कठिन है। अतएव सब तरहसे विचार करनेपर इस आपत्तिकालमें आपके लिये वैश्यवृत्ति ग्रहण करना उत्तम मालूम होता है, किन्तु व्यापार करनेके लिये आपके पास धन नहीं है। इसलिये इसके लिये अच्छा होगा कि नौकरी न करके किसीकी दूकानमें अपना हिस्सा रख लें, हिस्सा कामका ही हो और उसका परिमाण दूकानके मालिकके साथ यथोचित निश्चित कर लिया जाय।

आपने लिखा कि मैं दान लेनेकी अपेक्षा नौकरी करके

निर्वाह करना उत्तम समझता हूँ। यह बात आपने अपने स्वभाव और युक्तिके अनुसार ही लिखी है और एक दृष्टिसे उसे ठीक भी कहा जा सकता है। किन्तु सच पूछिये तो धर्मशास्त्रके अनुसार और मनु आदि ऋषि-महर्षियोंके विचारानुसार नौकरी भिक्षावृत्तिसे भी नीची है। ब्राह्मणके लिये नौकरीकी अपेक्षा भिक्षावृत्ति ही उत्तम है। वर्तमान समयमें भिक्षावृत्तिका प्रचलन उठ गया है, लोग इसका महत्त्व भूल गये हैं और इस वृत्तिका आश्रय लेनेवाले लोग दूषित परान्न खानेके कारण गिरी हुई अवस्थामें दिखलायी देते हैं। इसीसे युक्ति बतलाती है कि इसकी अपेक्षा तो नौकरी करके ही पेट पालना उत्तम है। पुराने समयमें ब्राह्मणलोग जो दान लेते थे, जो भिक्षा ग्रहण करते थे, उसका लक्ष्य दाता या यजमानका कल्याण करना होता था। उनका ध्यान इसी बातपर रहता था कि दाता और यजमानका कल्याण हो, वे इसके द्वारा अपने निर्वाहकी बात नहीं सोचते थे। इसीसे उस समयमें यह वृत्ति युक्तिसे भी नौकरीकी अपेक्षा श्रेष्ठ मालूम होती थी। परन्तु आज भाव बदल गया है और इसलिये उसकी उपयोगिता भी नष्ट हो गयी है। अगर भाव ठीक हो जाय तो वह वृत्ति आज भी श्रेष्ठ ही है।

आपको शम, दम, तप इत्यादि स्वाभाविक धर्मोंको करते हुए माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदिका पालन तथा अपने निर्वाहके लिये न्यायसंगत उपायोंसे धन पैदा करनेकी कोशिश नित्य-निरन्तर भगवान्‌को ध्यानमें रखकर करते रहना चाहिये। यही तो भगवान्‌ने गीतामें अर्जुनसे कहा था—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

[८०]

आपका पत्र यथासमय मिल गया था। मैं कई दिनोंतक बाहर दौरेपर था, इधर स्वास्थ्य भी कम ठीक है, ऐसे ही कारणोंसे उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया है, आशा है कि आप कृपया क्षमा करेंगे। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिये आप जो प्रयत्न कर रहे हैं सो ठीक ही है। स्वप्नद्वारा हानि होती है सो आहार और विचारादिकी अशुद्धि ही इसमें मुख्य कारण समझा जाता है। आपको अपने आहार-विचारादिके विषयमें फिर विचार करना चाहिये। क्योंकि शास्त्रोंमें कामकी उत्पत्तिका मूल संकल्प ही बताया गया है—

काम जानामि ते मूलं सङ्कल्पात् किल जायसे।
सङ्कल्पे तु मया त्यक्ते कथं त्वं जायसे पुनः॥

श्रीशंकराचार्यजीका कथन है—

कामस्य विजयोपायं सूक्ष्मं वक्ष्याम्यहं सताम्।
सङ्कल्पस्य परित्याग उपायः सुलभो मतः॥
सङ्कल्पानुदये हेतुर्यथा भूतार्थदर्शनम्।
अनर्थचिन्तनं चाभ्यां नावकाशोऽस्य विद्यते॥

(सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह ६२, ६७)

इसलिये शुद्ध संकल्पसे ही इसका नाश होता है। रात्रिमें शयन करते समय श्रीगीताजीके श्लोकोंका पाठ करते हुए और उनके अर्थका चिन्तन करते हुए सोना चाहिये। इससे रात्रिके संकल्प पवित्र रहते हैं। विषयोंमें वैराग्य, उपरामता और हर समय ईश्वर-चिन्तन करते रहनेसे दिनके संकल्प पवित्र रहते हैं।

(२) आप छः घण्टे भजनमें बैठते हैं सो बहुत उत्तम है। मनकी उधेड़-बुन मिटानेके लिये गायत्रीका जप करते समय मन्त्रके अर्थका ध्यान बार-बार करना चाहिये। प्रत्येक मन्त्रके जपके समय अर्थकी आवृत्ति करते रहना चाहिये। अथवा गायत्रीके मन्त्रको कागज या दफ्तीपर लिखकर सामने टाँग दिया जाय और जपते समय बार-बार उसे पढ़ा जाय एवं मनमें अर्थका ध्यान किया जाय। अथवा अपने मानसिक इष्टदेवके मस्तकपर मनके द्वारा मन्त्रको चन्दनसे लिखकर बार-बार पढ़ा जाय। इन साधनोंसे भी मनका एकाग्र होना सम्भव है।

(३) भजन करते समय दो प्रधान विघ्न उपस्थित होते हैं (१) निद्रा, (२) स्फुरण (विक्षेप) अर्थात् मनमें नयी-नयी उधेड़-बुनका बार-बार उठना। इन दोनोंको मिटानेके लिये दूसरे प्रश्नके उत्तरमें लिखे उपायोंके अनुसार मन्त्र और उसके अर्थका ध्यान करना चाहिये। इससे ये विघ्न दूर होकर मन टिक सकता है।

(४) भजन करनेसे कोई व्याधि नहीं होनी चाहिये, यह आपका विश्वास ठीक है। यदि काकतालीय न्यायवत् किसीके कुछ हो भी जाती हो तो उसे भजनका परिणाम न समझकर भजन करनेवालेको इसका कोई विचार नहीं करना चाहिये। क्योंकि सभीको कोई तकलीफ देखनेमें नहीं आती है।

(५) आत्मामें प्रसन्नता, उत्साह और एकाग्रताके साधन इस प्रकार हैं—पद-पदपर अपने ऊपर ईश्वरकी पूर्ण दयाका दर्शन करनेसे उत्साह और प्रसन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। प्रत्येक सुख और दुःखकी प्राप्तिमें उस सुख-दुःखको ईश्वरका विधान समझनेसे उत्साह और प्रसन्नता बढ़ती है और ज्यों-ज्यों उत्साह एवं प्रसन्नता बढ़ती जाती है त्यों-ही-त्यों ईश्वरकी दयाका रहस्य

भी अधिकाधिक समझमें आता है। चित्तकी एकाग्रताके लिये सबसे उत्तम उपाय अभ्यास और वैराग्य है। संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें आसक्ति न रहनेका नाम वैराग्य है और गुण एवं प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूपचिन्तनके लिये पुनः-पुनः प्रयत्न करनेका नाम अभ्यास है।

(६) भगवन्नाम-जपके सहित प्राणायामके अभ्याससे एवं गुण और प्रभावसहित ईश्वरके स्वरूपका ध्यान करनेसे मनकी चंचलताका नाश सहज ही हो सकता है।

सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंपर दया करके सब भूतोंके हितमें रत होनेसे मत्सरता-बुद्धिका नाश हो सकता है।

(७) बुद्धिको कुशाग्र और तीक्ष्ण करनेके लिये सत्पुरुषोंका संग एवं सत्-शास्त्रोंका विचार करना चाहिये। निष्काम कर्मयोग और उपासनाके द्वारा पवित्र होनेसे भी बुद्धिमें कुशाग्रता और तीक्ष्णता आती है और स्मरणशक्ति बढ़ सकती है। ब्रह्मचर्यका पालन इसमें विशेष सहायक होता है।

(८) आयु यद्यपि नियत रहती है पर अनुचित आहार-विहार एवं दुराचारसे वह घट सकती है तथा हठसे मरनेकी कोशिश करनेपर अकालमृत्यु भी हो सकती है। इसी प्रकार शुद्ध आहार-विहार-सेवन, एवं ब्रह्मचर्यके पालन और योगके साधनसे आयुका बढ़ना भी सम्भव है।

(९) अधिक-से-अधिक एक घण्टा व्यायाम स्नानके एक घण्टा पहले या पीछे करना स्वास्थ्यके लिये लाभप्रद है।

(१०) भगवान्के तत्त्वको जाननेवाले पुरुषोंद्वारा भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीलाके रहस्य तथा प्रभाव और तत्त्वको समझनेसे भगवान्में अतिशय श्रद्धा होकर अनन्य प्रेम हो जाता है।

श्रीगौरांग, मीराबाई आदिकी तरह भगवान्को ही सर्वोत्तम

और सर्वश्रेष्ठ मानने और समझनेसे भगवान्‌में अनन्यप्रेम हो सकता है।

(११) ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए शनैः-शनैः अभ्यास करनेसे अर्थात् धूपमें थोड़ी-थोड़ी धूप सहते-सहते और इसी तरह थोड़ा-थोड़ा शीत सहन करते-करते आदत हो जाती है और फिर शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। महर्षि पतंजलिने योगदर्शनमें आसनजित् होनेसे भी ऐसी स्थिति होनेके लिये कहा है।

(१२) अष्टांगयोगमार्गके अनुसार साधन करनेवाले योगियों-का दशम द्वार 'ब्रह्मरन्ध्र' खुलता है। इस अष्टांगका वर्णन महर्षि पतंजलिने योगदर्शनके दूसरे और तीसरे पादमें किया है। दशम द्वारके न खुलनेसे कोई हानि नहीं है और खुलनेसे मोक्षतककी प्राप्ति हो सकती है। अकस्मात् काकतालीय न्यायवत् अन्य किसी पुरुषकी भी ऐसी मृत्यु हो सकती है। गीताके ८ वें अध्यायके १२-१३ श्लोकमें भी इसका वर्णन है। यह कोई नियम नहीं है कि मुक्ति-मार्गमें जानेवाले सभी पुरुषोंके ब्रह्मरन्ध्र भेदन होकर ही प्राण जायँ। यहाँ भी प्राण ब्रह्ममें विलीन हो सकते हैं और यह गति बहुत उत्तम मानी गयी है।

(१३) सिद्धियाँ अनन्त हैं। उनमें आठ मुख्य हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। इनका वर्णन योगदर्शनके तीसरे पादमें, भागवत एकादश स्कन्धमें और हठयोगप्रदीपिका आदिमें है। इस समय इनकी जानकारीवाले सिद्ध योगी देखनेमें नहीं आते। इनकी प्राप्तिका उपाय इनके जाननेवाले योगियोंद्वारा तत्पर होकर साधनके लिये कोशिश करनेसे ही प्राप्त होना सम्भव है। कल्याणमार्गमें चलनेवाले

पुरुषोंके लिये सिद्धियाँ बाधक बतायी गयी हैं। इसलिये परमार्थके साधकको इस झंझटमें नहीं पड़ना चाहिये। मुझको इनका कुछ भी अनुभव नहीं है।

(१४) सुषुम्णानाडीका विषय बड़ा गहन है। शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे इसका वर्णन मिलता है। इस विषयमें योगदर्शनके प्रथम पादमें 'विशोका वा ज्योतिष्मती' सूत्रकी व्याख्या (व्यासभाष्य) देखनी चाहिये। प्रश्नोपनिषद् एवं और भी योगविषयक शास्त्रोंमें यह विषय आया है।

सुषुम्णानाडी परम शान्ति और परमानन्दको देनेवाली है। इसके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। पत्रद्वारा इसका साधन समझाना कठिन है।

(१५) अच्छे योगियों और महात्माओंके दर्शन अधिकतासे कहाँ होते हैं इसका मुझे पता नहीं है। प्रथम तो योगी और महात्मा होते ही कम हैं। जो हैं, उनका भी मिलना कठिन है और मिलनेपर पहचानना भी कठिन है। उत्तराखण्डमें एवं गंगाकिनारे ऐसे पुरुष सुने जाते हैं। श्रद्धा होनेपर भगवान् और महापुरुषोंकी दयासे उनके दर्शन होते हैं।

(१६) ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होनेका उपाय पूछा सो श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंकी सेवा और संगसे, एवं परमेश्वरकी नित्य-निरन्तर प्रेमपूर्वक अनन्यभक्ति करनेसे परमेश्वरकी दयासे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होती है। गीताके इन श्लोकोंको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(४।३४)

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(१०।९—११)

इस प्रकार आपके प्रश्नोंका उत्तर है और कुछ पूछना हो तो निःसंकोच पूछनेकी कृपा करेंगे।

॥ श्रीहरि: ॥

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
683	तत्त्वचिन्तामणि	248	कल्याणप्राप्तिके उपाय
814	साधन-कल्पतरु (तेरह महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)	249	शीघ्र कल्याणके सोपान
1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?	250	ईश्वर और संसार
1631	भगवान् कैसे मिलें ?	519	अमूल्य शिक्षा
1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य	253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि
1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि
1666	कल्याण कैसे हो ?	252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा
527	प्रेमयोगका तत्त्व	254	व्यवहारमें परमार्थकी कला
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा	255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम
528	ज्ञानयोगका तत्त्व	258	तत्त्वचिन्तामणि
266	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-१)	257	परमानन्दकी खेती
267	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-२)	260	समता अमृत और विषमता विष
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	259	भक्ति-भक्त-भगवान्
298	भगवान्के स्वभावका रहस्य	256	आत्मोद्धारके सरल उपाय
243	परम साधन—भाग-१	261	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान
244	,, ,, भाग-२	262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र
245	आत्मोद्धारके साधन-भाग-१	263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति	264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१
579	अमूल्य समयका सदुपयोग	265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-२
246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)	268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१
247	,, ,, (भाग-२)	269	परमशान्तिका मार्ग—भाग-२
611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति	543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह
588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	1530	आनन्द कैसे मिले ?
1296	कर्णवासका सत्संग	769	साधन नवनीत
1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता		

कोड	पुस्तक
599	हमारा आश्चर्य
681	रहस्यमय प्रवचन
1021	आध्यात्मिक प्रवचन
1324	अमृत वचन
1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय
1433	साधना पथ
1483	भगवत्पथ-दर्शन
1493	नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें
1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय
1529	सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो?
1561	दुःखोंका नाश कैसे हो?
1587	जीवन-सुधारकी बातें
1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम
292	नवधा भक्ति
274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी
273	नल-दमयन्ती
277	उद्धार कैसे हो?— ५१ पत्रोंका संग्रह
278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह
280	साधनोपयोगी पत्र
281	शिक्षाप्रद पत्र
282	पारमार्थिक पत्र
284	अध्यात्मविषयक पत्र
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ
1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें
680	उपदेशप्रद कहानियाँ
891	प्रेममें विलक्षण एकता
958	मेरा अनुभव
1283	सत्संगकी मार्मिक बातें
1150	साधनकी आवश्यकता

कोड	पुस्तक
320	वास्तविक त्याग
285	आदर्श भ्रातृप्रेम
286	बालशिक्षा
287	बालकोंके कर्तव्य
272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा
290	आदर्श नारी सुशीला
291	आदर्श देवियाँ
300	नारीधर्म
271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?
293	सच्चा सुख और.......
294	संत-महिमा
295	सत्संगकी कुछ सार बातें
301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म
310	सावित्री और सत्यवान्
299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति—गजल-गीतासहित
623	धर्मके नामपर पाप
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ)
311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य
306	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?
307	भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण)
316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति
314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य